नागरीप्रचारिणी पत्रिका

त्रैमासिक

वर्ष ४५ [नवीन संस्करण] अंक ३

कार्तिक १९९७

विषय-सूची

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

मूल्य प्रति संख्या २॥)

पत्रिका के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।
२—हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।
३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।
४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

सूचना

"सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुखपत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। ये सभासद पत्रिका के पुराने अंक और सभा द्वारा प्रकाशित अन्य पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति ३/४ मूल्य पर ले सकते हैं। परंतु प्रबंधसमिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष पुस्तक को इस नियम के बाहर रक्खे।"

(ना॰ प्र॰ सभा का नियम सं॰ २१)

लिये उपयुक्त है। पुस्तिका में महात्मा गांधी, सीमांत के गांधी, बिहार के गांधी, लोकमान्य तिलक, देशबंधु दास आदि ९ नेताओं की संक्षिप्त जीवनियाँ हैं। जीवनियों की सामग्री बालोपयोगी है। भाषा और शैली अच्छी है, कागज और छपाई अच्छी है। मुखपृष्ठ पर इन नेताओं के अर्धचित्र भी दिए गए हैं। पर बच्चों की इस पुस्तक में और अच्छे चित्र होते तो पुस्तक का आकर्षण बढ़ जाता। शायद इतने कम दाम में अधिक चित्र देना संभव न रहा हो। पर हिंदी में लिखे बालोपयोगी साहित्य में चित्रों की कमी को प्रकाशकों और लेखकों को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए। इसके बिना बहुत सी उपयोगी सामग्री रूखी रहने के कारण बच्चों को बिना छूए उनकी निगाह से निकल जाती है।

—खानचंद गौतम।

वीणा—मध्यभारत हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर की मासिक मुख-पत्रिका, ग्राम-सुधार अंक, नवंबर १९४०।

वीणा हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं में से है और वह वर्षों से हिंदी की अच्छी सेवा कर रही है। समयानुरूप, ग्रामसुधार के महत्त्वपूर्ण विषय को लेकर, उसका यह विशेष अंक प्रस्तुत हुआ है। इसमें ग्रामसुधार तथा कृषि के विशेषज्ञों के लेख हैं, तीन कविताएँ हैं, एक कहानी भी है और गांधीजी, जवाहरलाल आदि नेताओं के संदेश हैं। लेखों में ग्राम-सुधार से संबंध रखनेवाले प्राय: प्रत्येक प्रश्न पर विचार किए गए हैं और इस विषय में रुचि रखनेवाले लोगों के लिये उनमें पर्याप्त सामग्री एकत्र है।

आजकल ग्राम-सुधार के विषय में भी बहुत कुछ उसी प्रकार फैशन के रूप में कहने की प्रथा हो गई है जिस प्रकार प्रत्येक नए विषय पर। उसमें लेखन-कला होती है, तर्क और युक्ति रहती है और वैज्ञानिक और शास्त्रीय विवेचन रहता है; पर वास्तविक प्रश्न को उचित रूप में सुलझाने का प्रश्न जहाँ का तहाँ रहता है। इस अंक में श्री प्रफुल्ल-

चंद्र वसु, श्री नारायण विष्णु जोशी, श्री झवेर भाई पटेल आदि ने अपने लेखों में कुछ वास्तविक कठिनाइयों की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है जो विचारणीय है।

अंक उपयोगी और पठनीय तो है ही, सुंदर भी है। भाषा और प्रूफ-संशोधन की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

—चित्रगुप्त।

——

जीवन साहित्य—मासिक पत्रिका; वर्ष १ अंक १ [अगस्त १६४०]; संपादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; रायल अठपेजी आकार के ४६ पृष्ठ; मूल्य एक प्रति का ४ आ०, अथवा २ रु० वार्षिक; छपाई आदि अच्छी।

'वास्तविक साहित्य वही है जो जीवन में से निकलता है। साहित्य से बना जीवन पोपला होता है, पर जीवन में से निकले साहित्य में जीवन—जान—होता है। साहित्य का यहाँ संकुचित अर्थ नहीं है। जीवन की जितनी भी स्थूल अभिव्यक्तियाँ लिपिबद्ध हो सकती हैं, जीवनोपयोगी जो कुछ भी लिखा या प्रकट किया जा सकता है, वह सब 'साहित्य' के अंतर्गत यहाँ है। हृदय और मस्तिष्क—भावना और बुद्धि—का उचित सामंजस्य 'जीवन-साहित्य' की विशेषता रहेगी। 'जीवन-साहित्य' संस्कृति का उपासक होगा। ऐसी संस्कृति का, जिसका मूलाधार प्रकृति हो, लेकिन जो आगे देखती हो—ईश्वर या आत्मा की तरफ।'—इस संपादकीय स्पष्टीकरण के साथ पत्रिका का प्रथम अंक सामने है। साहित्य और समाज अथवा लेखक और लोक के प्रति जिस कल्याणकारी भावना को लेकर 'जीवन-साहित्य' का जन्म हुआ है वह उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट है।

इस अंक में कतिपय विचारणीय और मननीय लेख आए हैं। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का 'पृथिवी-पुत्र' संस्कृत शब्द-भंडार और प्राकृतिक, भौगोलिक तथा पशु-पक्षी-संबंधी प्राचीन साहित्य की ओर

से वर्तमान साहित्यकारों की जिस उदासीनता की ओर संकेत करता है वह सचमुच अत्यंत चिंत्य है। हिंदी-भाषी ही नहीं, संस्कृतजात अन्य प्रांतीय भाषा-भाषी वर्ग मात्र इस ओर से उदासीन है। इस प्रमाद का परिणाम भारतीय संस्कृति के लिये तो पतनकारी होगा ही, भाषा पर उसका जो कुप्रभाव हो सकता है वह तो स्पष्ट लक्षित हो रहा है। किंतु अभी भी विशेष विलंब नहीं हुआ है। सबेरे के भूले यदि साँझ तक घर लौट आएँ तो भी संतोष की बात होगी। काका साहब के "विद्या का क्रम" में गुरुजनों को दिए गए शिक्षा-संबंधी सत्परामर्श का अपना अलग और प्रधान महत्त्व तो है ही, दैनिक कामकाज के साधारण ज्ञान से अनभिज्ञ कोरे दार्शनिकों और तत्त्वज्ञानियों के प्रति जिस मधुर व्यंग्य का संश्लेष है वह सीधे हृदय को स्पर्श करनेवाला है। 'साहित्य से सर्वोदय', 'विज्ञान और समाज', 'लेखक से'-आदि अन्य लेख भी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं। देश के विद्वान् विचारकों और श्रेष्ठ साहित्यकारों का सहयोग इसे प्राप्त है और संपादन अनुभवी हाथों में है, अतएव पत्रिका की उन्नति की आशा पर सहज ही विश्वास किया जा सकता है।

आरती—मासिक पत्रिका, अगस्त १९४० (वर्ष १, अंक १); संपादक श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन और श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'; रायल अठपेजी आकार, ८० पृष्ठ ; मूल्य एक प्रति का ।।) अथवा ५) वार्षिक।

पटना सिटी के आरती-मंदिर ने गत अगस्त से इस पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया है। बिहार के लिये तो चीज नई है ही, हिंदी की वर्तमान श्रेष्ठ पत्रिकाओं से परिचितों को भी यह एक विशेष ढंग की मालूम पड़ेगी। लेख भिन्न भिन्न विषयों के हैं, कहानियाँ भी उच्च कोटि की और भिन्न भिन्न रुचि की हैं, कविताओं का चयन भी वैसा ही अच्छा है। दोनों साहित्यिक निबंधों में 'समालोचना और

कविता का क्षेत्र' विशेष रुचिकर है। 'रीतिकाल' वाला संलाप भी अपने ढंग की अच्छी चीज है और दूसरे पक्ष की बातें जानने की उत्सुकता पाठक में बनाए रहती है। 'कला एवं शिल्प के उपादान' से हमारे शिल्पी और कलाकार यदि सहमत हो सकते! 'युद्ध और अहिंसा' जैसा बौद्धिक सामग्री वाला लेख और सेगाँव और उसके संत के संबंध में भावुक-भक्ति-पूर्ण वर्णन को पढ़कर पाठक संपादन-नीति का समर्थन ही करेगा। कविताओं में 'ओ गाँव से आनेवाले बता' की भाषा कुछ अजीब सी है; 'माताओं' को जबरदस्ती 'माबों' बनाना आजकल कौन स्वीकार करेगा? अस्तु।

बिहार से सचमुच यह एक पुष्ट चीज निकली है। संपादकों ने ऐसी कुशलता निबाही और यदि उन्हें साहित्यकारों का सहयोग इसी प्रकार मिलता रहा तो इसमें संदेह नहीं कि अपनी कोटि की पत्रिकाओं में बहुत शीघ्र 'आरती' अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेगी।

—शं० वा०।

समीक्षार्थ प्राप्त

अतृप्त मानव—लेखक श्री वृजेंद्रनाथ गौड़; प्रकाशक रत्नमंदिर उर्मिला कार्यालय, लखनऊ; मूल्य ॥)।

अनंत आनंद की ओर—प्रकाशक श्री लक्ष्मीनारायण राजपाल बी० ए०, लक्ष्मीभवन झाँसी; मूल्य ।)।

अनुराधा—लेखक श्री श्यामसुंदर पंड्या; प्रकाशक गयाप्रसाद एंड संस, आगरा; मूल्य अज्ञात।

आस्ट्रिया—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय; इलाहाबाद; मूल्य ।=)।

इराक—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ।=)।

ऋभुदेवता—लेखक श्री भगवद्दत्त वेदालंकार; प्रकाशक चमूपति साहित्य विभाग गुरुदत्तभवन लाहौर; मूल्य ॥) ।

कादंबरी कथासार—लेखक श्री गुलाबराय; प्रकाशक गयाप्रसाद एंड संस, आगरा; मूल्य ॥=) ।

कानन—लेखक श्री जानकीवल्लभ शास्त्री; प्रकाशक पुस्तकभंडार, लहेरियासराय; मूल्य १॥) ।

कायाकल्प—लेखक तथा प्रकाशक बुद्धदेव विद्यालंकार, गुरुदत्त भवन लाहौर; मूल्य १) ।

गायत्री-पुरश्चरणम्-लेखक तथा प्रकाशक श्री विश्वेश्वरदयालुजी वैद्य, बरालोकपुर, इटावा; मूल्य ।) ।

चेकोस्लोवेकिया—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ॥) ।

जर्मनी का आक्रमण नार्वे पर—लेखक श्री उमेशचंद्र मिश्र; प्रकाशक इंडियन प्रेस लि० इलाहाबाद; मूल्य ॥) ।

जाट इतिहास—लेखक ठाकुर श्री देशराज; प्रकाशक व्रजेंद्र साहित्य समिति, आगरा; मूल्य ५) ।

जाट इतिहास—लेखक ठाकुर श्री देशराज; प्रकाशक मित्रमंडल प्रेस, राजामंडी, आगरा; मूल्य ॥) ।

जाटराष्ट्र-निर्माता—लेखक ठाकुर श्री देशराज; प्रकाशक मारवाड़ जाट सभा, नागौर, जोधपुर; मू० ॥) ।

जानते हो ?—लेखक श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मू० ॥।) ।

जेलकहानी—लेखक श्री खुशहालचंद; प्रकाशक ओमूप्रकाश सूरि; मिलाप पुस्तकालय, लाहौर; मू० १) ।

तरुणाई के बोल—लेखक ठाकुर श्री देशराज; प्रकाशक मित्रमंडल, प्रेस, राजामंडी, आगरा; मू० ।) ।

देवता—लेखक श्री राधाकृष्णप्रसाद; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मू० ॥=) ।

धर्मवीर जुझार तेजा—लेखक तथा प्रकाशक श्री रिछपाल सिंह, धमैड़ा मालागढ़, जिला बुलंदशहर; मू० ~)।

नहुष—लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; मू० ।=)।

नागरिक जीवन भाग १-२—लेखक श्री गोरखनाथ चौबे; प्रकाशक रामनारायणलाल, इलाहाबाद; मू० ।=)।

पड़ोसी—लेखक श्री श्रीनाथसिंह; प्रकाशक नेशनल लिटेरचर कंपनी १०५ काटनस्ट्रीट, कलकत्ता; मू० १।=)।

पारिजात—लेखक श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; प्रकाशक पुस्तकभंडार, लहेरियासराय; मू० ४)।

पेलेस्टाइन—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मू० ।=)।

पोलैंड—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मू० ।=)।

प्रतियोगिता-पथ-प्रदर्शक—लेखक श्री नंदकिशोर शर्मा और श्री रंजनलाल जैन; प्रकाशक किशोर एंड कंपनी देहली; मू० १॥)।

प्राचीन जीवन—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मू० ।≈)।

प्रिय-प्रवास दर्शन—लेखक श्री लालधर त्रिपाठी; प्रकाशक साहित्योद्यान विक्टोरिया पार्क, बनारस; मू० १।)।

फिनलैंड—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ।≈)।

बरमा—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ।≈)।

बलिदान—लेखक श्री नरवरी; प्रकाशक सार्वदेशिक सभा, बलिदान भवन, दिल्ली; मूल्य ॥)।

बेकारी और हिंदू मुसलिम समस्या का एकमात्र उपाय—लेखक श्री रामशरण गुप्त; प्रकाशक हिंदुस्तानी व्यापारसंघ, दिल्ली; मू० ~)।

बेल्जियम—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ।=)।

ब्राह्मणोत्पत्ति दर्पण—लेखक श्री प्रभुदयाल शर्मा; प्रकाशक शर्मन प्रेस, इटावा; मूल्य १)।

भारतीय दर्शन-परिचय, न्याय दर्शन—लेखक श्री हरिमोहन झा; प्रकाशक पुस्तक भंडार, लहेरियासराय।

भारतीय सभ्यता का विकास—लेखक श्री कालिदास कपूर; प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ; मूल्य ॥)।

मानव—लेखक तथा प्रकाशक श्यामबिहारी शुक्ल; साहित्य-निकेतन, कानपुर।

मिश्र—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ॥।)।

यूगोस्लैविया—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ।≤)।

रसवंती—लेखक श्री दिनकर; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरिया-सराय; मूल्य ॥।)।

राजदुलारी—प्रकाशक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, मूल्य १)।

राजस्थान के ग्रामगीत—लेखक श्री सूर्यकरण पारीक; प्रकाशक गयाप्रसाद एंड संस, आगरा; मूल्य ॥।)।

रूमानिया—संपादक श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मू० ।≤)।

लोकव्यवहार—लेखक श्री संतराम; प्रकाशक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद; मू० २)।

विश्वदर्शन—लेखक श्री व्रजनंदनसहाय 'व्रजवल्लभ'; प्रकाशक पुस्तकभंडार, लहेरियासराय; मू० १)।

वेश्या—लेखक श्री कृष्णानंद अवस्थी; प्रकाशक आर्ट प्रेस, कानपुर; मूल्य १)।

शार्दूल—लेखक श्री लालधर त्रिपाठी; प्रकाशक साहित्योद्यान, ७० विक्टोरिया पार्क, काशी; मूल्य १) ।

सनाढ्य पारिजात—लेखक श्री रामसहाय जी मिश्र; प्रकाशक शर्मन प्रेस, इटावा; मूल्य ॥) ।

साहित्य-लहरी—टीकाकार श्री महादेवप्रसाद; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मूल्य १॥) ।

सीताराम संग्रह—संपादक श्री हरदयालुसिंह, प्रकाशक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

सूर : एक अध्ययन—लेखक श्री शिखरचंद जैन; प्रकाशक नरेंद्र साहित्यकुटीर, इंदौर; मूल्य ॥।) ।

स्वस्तिका—लेखक श्री निरंकारदेव सेवक; प्रकाशक हिंदीप्रचारिणी सभा, बरेली कालेज, बरेली; मूल्य ॥=) ।

स्वामी—लेखक शरच्चंद्र, अनुवादक श्री रूपनारायण पांडेय; प्रकाशक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद; मूल्य ॥) ।

हमारे गद्य-निर्माता—लेखक श्री प्रेमनारायण टंडन; प्रकाशक गयाप्रसाद ऐंड संस, आगरा; मूल्य १।) ।

हलचल—लेखक तथा प्रकाशक श्री चंद्रभाल; खजांची महल्ला, अलमोड़ा; मूल्य ॥) ।

हिंदी भाषा और साहित्य का विकास—लेखक श्री अयोध्या-सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; प्रकाशक पुस्तकभंडार, लहेरियासराय; मू० ५) ।

हिंदूत्यौहारों का मनोरंजक आदिकारण—लेखक तथा प्रकाशक श्री रामप्रसाद, हेडमास्टर गवर्नमेंट हाईस्कूल, बस्ती; मूल्य १।) ।

———

विविध

संस्कृत का महत्त्व

प्रधानभाषा-पक्ष

नवम आल इंडिया ओरिएंटल कान्फरेंस (अखिलभारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन) के सभापति डाक्टर एफ० डब्ल्यू० टामस, एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी० लिट०, सी० आइ० ई० ने २१ दिसंबर १६३७ ई० को कान्फरेंस के संस्कृतविभाग के अध्यक्ष-पद से संस्कृत भाषा का महत्त्व बताते हुए कहा था (कान्फरेंस का सविस्तर विवरण इस वर्ष प्रकाशित हुआ है):

किसी देश्य भाषा की अपेक्षा संस्कृत से विशेष लाभ यह है कि यह बहुतेरी आर्य तथा द्राविड़ भाषाओं में परस्पर स्पर्धी व्युत्पन्न शब्दों की एक ही प्रकृति के रूप में प्रसिद्ध है। वाक्य-रचना का अपेक्षित विधान संस्कृत में किसी देश्य भाषा से बड़ा होना आवश्यक नहीं है। भारत के बाहर उन देशों के साथ अंत:संबंध सरल बनाने में संस्कृत से सुविधा होगी, जिनका धार्मिक साहित्य संस्कृतमूलक है, जिनके विस्तार के अंतर्गत······मध्य और पूर्वीय एशिया का एक बड़ा भाग है।

इसलिये मैं यह नहीं मानता कि संस्कृत का भारतवर्ष के लिये एक सामान्य साहित्यिक माध्यम का स्थान पुनः ग्रहण करना एक सर्वथा गई-बीती बात है; क्योंकि इसके विकल्प ये ही हैं कि या तो ऐसा कोई माध्यम न हो (अँगरेजी को छोड़कर, जो—यह स्मरण रखना चाहिए—कितनी ही आवश्यक भारतीय कल्पनाओं के लिये स्वयं असमर्थ है) या अनिवार्य अनिच्छाओं के रहते किसी एक देश्य भाषा का प्राधान्य हो जाय।

(कान्फरेंस का विवरण, पृष्ठ ४०५—अनूदित)

बंबई हिंदी-विद्यापीठ के द्वितीय अधिवेशन में, २० अक्तूबर १६४० ई० को श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य ने देश की भाषा-समस्या पर प्रवचन करते हुए कहा है :—

संक्षेप में बात इस प्रकार है कि—

(१) भारतवर्ष के दर्शन-विज्ञान आदि की भाषा सदा संस्कृत रही है।

(२) उसके धर्म-प्रचार की भाषा अधिकांश में संस्कृत रही है, यद्यपि बीच बीच में साहित्य के रूप में और सदैव बोलचाल के रूप में देशी भाषाएँ भी इस प्रयोजन के लिये काम में लाई जाती रही हैं।

(३) आज से चार-पाँच सौ वर्ष पहले तक व्यवहार, न्याय और राजनीति की भाषा भी संस्कृत ही रही है। पिछले चार-पाँच सौ वर्षों से विदेशी भाषा ने इस क्षेत्र को दखल किया है।

(४) काव्य के लिये सदा से ही कथ्य देशी भाषाएँ काम में लाई गई हैं और संस्कृत भी सदा इस कार्य के उपयुक्त मानी गई है।

× × × ×

परंतु मित्रो, हम अब संस्कृत को फिर से नहीं पा सकते। अगर बीच में अँगरेजी ने आकर हमारी परंपरा को बुरी तरह तोड़ न भी दिया होता तो भी आज हम संस्कृत को छोड़ने को बाध्य होते; क्योंकि वह जनसाधारण की भाषा नहीं हो सकती।

× × × ×

हमें एक ऐसी भाषा चुन लेनी है जो हमारी हजारों वर्ष की परंपराओं से कम से कम विच्छिन्न हो और हमारी नूतन परिस्थिति का सामना अधिक से अधिक मुस्तैदी से कर सकती हो; संस्कृत न होकर भी संस्कृत सी हो और साथ ही जो प्रत्येक नए विचार को, प्रत्येक नई भावना को अपना लेने में एकदम हिचकिचाती न हो—जो प्राचीन परंपरा की उत्तराधिकारिणी भी और नवीन चिंता की वाहिका भी हो।

संस्कृत भारत की यथार्थ राष्ट्रभाषा, 'भारती' थी। अब वह ऐसी प्रधानभाषा नहीं हो सकती तो जो 'देश्य भाषा' प्रधान सिद्ध हो रही है वह सहज ही उसकी उत्तराधिकारिणी है, 'संस्कृत न होकर संस्कृत सी' है, 'प्राचीन परंपरा की उत्तराधिकारिणी भी और नवीन चिंता की वाहिका भी' है—अर्थात् हिंदी भाषा। अब भी संस्कृत का प्रभाव जीवंत है, उसकी उपादेयता प्रमाणित है। संस्कृत का महत्त्व अनुपेक्ष्य है।

प्राचीन (आकर) भाषा-पक्ष

श्री वीरभद्रप्पा के बंगलोरनगरस्थ संस्कृत-वेद-पाठशाला के रजत-जयंती-महोत्सव के अवसर पर, १० फरवरी १६४० ई० को, सर मिर्जा इसमाईल ने भाषण करते हुए कहा था :

मैं नहीं जानता कि यह अत्युक्ति मानी जायगी या नहीं यदि मैं कहूँ कि संस्कृत का अध्ययन बुद्धिविलास से बढ़कर ही कुछ वस्तु है। यदि यह मानना स्पष्टतः कठिन होगा कि इस भाषा या इसके साहित्य का ज्ञान साधारण जन के व्यावहारिक जीवन में अपेक्षित है, तो मैं समझता हूँ कि यह कुछ भी अयुक्त न होगा यदि मैं कहूँ कि हमारे शिक्षित युवक अपने समय तथा शक्ति का एक भाग इस महिमामयी और आश्चर्यमयी भाषा का एक अच्छा सा ज्ञान उपार्जन करने में लगाकर अपना हित ही करेंगे। और इतिहास के अध्यवसायी विद्यार्थी के संबंध में तो, जो भारत के अतीत की महत्ता समझना चाहता है, मुझे संदेह है यदि वह संस्कृत के बिना सचमुच काम चला सकता है। क्योंकि भारत की प्राचीन सभ्यता का सार ही संस्कृत साहित्य है और इसमें हिंदू धर्म का सारतत्त्व प्रतिष्ठित है।

यद्यपि हिंदू धर्म और संस्कृत विद्या का इस प्रकार सहयोग है तथापि यह भाषा तथा इसका साहित्य स्वयं जो आकर्षण वहन करते हैं वह भौगोलिक और धार्मिक सीमाओं को पार कर जाता है।

(अनूदित)

संस्कृत की उपेक्षा पर किए गए एक प्रश्न का महात्मा गांधी ने रामगढ़ से १७ मार्च १६४० ई० को उत्तर लिखा था। २३ मार्च १६४० ई० के 'हरिजन' में प्रकाशित वह प्रश्नोत्तर यह है :

प्र०—क्या आप जानते हैं कि पटना विश्वविद्यालय ने संस्कृत का अध्ययन व्यवहारतः बहिष्कृत कर दिया है ? क्या आप इस व्यवहार को ठीक मानते हैं ? यदि नहीं, तो क्या आप अपना मत 'हरिजन' में प्रकट करेंगे ?

उ०—मैं नहीं जानता कि पटना विश्वविद्यालय ने क्या किया है। पर मैं आपसे इस बात में पूर्णतः सहमत हूँ कि संस्कृत के अध्ययन की खेदजनक उपेक्षा हो रही है। मैं उस पीढ़ी का हूँ जो प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में विश्वास रखती

थी। मैं नहीं मानता कि ऐसा अध्ययन समय और उद्योग का अपव्यय है। मैं तो मानता हूँ कि यह आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन में सहायक है। जहाँ तक भारत का संबंध है, यह बात किसी और प्राचीन भाषा की अपेक्षा संस्कृत के पक्ष में अधिक सत्य है और प्रत्येक राष्ट्रवादी को इसका अध्ययन करना चाहिए; क्योंकि इससे प्रांतीय भाषाओं का अध्ययन अन्य उपायों की अपेक्षा सुगमतर होता है। यह वह भाषा है जिसमें हमारे पूर्वपुरुष सोचते और लिखते थे। किसी हिंदू बालक या बालिका को संस्कृत के प्राथमिक ज्ञान से हीन नहीं रहना चाहिए, यदि उसे अपने धर्म की आत्मा का सहज बोध पाना है। यों गायत्री अनुवाद्य नहीं है। किसी अनुवाद में उसके मूल की संगीति नहीं मिल सकती जो, मैं मानता हूँ कि, अपना ही अर्थ रखती है। मैंने जो कहा है उसका गायत्री एक उदाहरण है।

(अनूदित)

कवि-मनीषी श्री रवींद्रनाथ ठाकुर का 'डाक्टर आव लेटर्स' की उपाधि से समादर करने के लिये आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने ७ अगस्त १९४० ई० को शांतिनिकेतन में ही जो विशेष उपाधिदानोत्सव मनाया था उस ऐतिहासिक अवसर पर लैटिन भाषा के समादरवचन का उत्तर संस्कृत में देकर श्री ठाकुर ने इस प्राचीन 'भारती' के गौरव का मान किया था। श्री ठाकुर के स्वागतवचन तथा स्वीकारवचन के लिये धन्यवाद देते हुए विश्वविद्यालय के प्रमुख प्रतिनिधि सर मारिस ग्वीअर ने कहा था :

मैं विश्वविद्यालय को आपकी स्वीकृति के शुभ शब्द पहुँचाना भूलूँगा नहीं, जो उस प्राचीन वाणी (संस्कृत) में कहे गए हैं—उस पूज्या जननी (वाणी) में—जिससे विश्वविद्यालय के समादर की भाषा (लैटिन) और यह भाषा जो मैं अब बोल रहा हूँ (अँगरेजी) समान रूप से अपना अपना उद्भव पाती हैं।

(अनूदित)

पर लैटिन तथा ग्रीक का इँगलैंड की शिक्षा-दीक्षा में अब भी सम्मान है और संस्कृत का भारत की शिक्षा-दीक्षा में ही अनुदिन अवमान हो रहा है!

भारत में संस्कृताध्ययन के प्रचार के लिये तर्क उपस्थित करते हुए, अक्तूबर १९४० ई० के 'माडर्न रिव्यू' में श्री सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी, एम० ए०, व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ ने लिखा है :

शिक्षा की आधुनिक दृष्टि से चकाचौंध में आए हुए हमारे शिक्षाधिकारी भारत में संस्कृताध्ययन की उपेक्षा से अगली संतति को होनेवाली बड़ी हानि को समझते नहीं। तथोक्त 'पाश्चात्यीकरण' के उत्साह में वे संस्कृताध्ययन को मृत और अनुपयुक्त विषय मानकर उसकी अवहेला करते हैं। परंतु उन्हें जानना चाहिए कि इँगलैंड में उनके सगोत्र प्राचीन भाषाओं की महत्ता और उपयोगिता के प्रति उदासीन नहीं हैं। वे न केवल अपनी शिक्षा-योजना में प्राचीन भाषाओं को विशेष स्थान देते हैं, अपितु उन्हें और लोकप्रिय बनाने का उद्योग करते हैं। आगे हम "संयुक्त राज्य की शिक्षा-व्यवस्था में प्राचीन भाषाओं के स्थान की जाँच करने के लिये ब्रिटिश शासन द्वारा नियुक्त समिति के कार्यविवरण" से उद्धरण देना चाहते हैं। विवरण पर एक चलते दृष्टिपात से भी यह मानना होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा में प्राचीन भाषाएँ विशेष स्थान की अधिकारिणी हैं। यहाँ यह साफ समझ लेना चाहिए कि लैटिन और ग्रीक का अँगरेजी से वैसा निकट संबंध नहीं है जैसा संस्कृत का आधुनिक भारतीय भाषाओं से है। आधुनिक भारतीय शब्दों में से बहुतेरे अब भी शुद्ध संस्कृत रूप में व्यवहृत हैं और शेष (विदेशी शब्दों को छोड़कर) संस्कृत से आए हैं।

(अनूदित)

जिस समिति के कार्यविवरण से लेखक ने आगे उद्धरण दिए हैं वह १९१९ ई० में ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान सचिव द्वारा "संयुक्त राज्य की शिक्षा-व्यवस्था में प्राचीन भाषाओं (ग्रीक और लैटिन) को दातव्य स्थान की जाँच करने के लिये और वे उपाय बताने के लिये जिनसे इन भाषाओं का उचित अध्ययन रक्षित और उन्नत हो" नियुक्त हुई थी। समिति ने बहुत व्यापक और श्रमपूर्ण जाँच के बाद १९२१ ई० में अपना विवरण प्रस्तुत किया था। ३०० से अधिक पृष्ठों के घने मुद्रण का वह बहुमूल्य ग्रंथ १९२३ ई० में प्रकाशित हुआ था।

उससे जो उपयुक्त उद्धरण लेखक ने दिए हैं वे पाठक 'माडर्न रिव्यू' के उक्त अंक में देखें। यहाँ हम वह अंतिम उद्धरण ही प्रस्तुत करते हैं जो विवरण के उपसंहार का एक अंश है :

हमने यह पाया कि राष्ट्रीय प्रगति, राष्ट्रीय जीवन और विचार का कोई क्षेत्र नहीं है जो किसी न किसी प्रकार हमारे विषय का स्पर्श नहीं करता। प्राचीन विचार हमारे आधुनिक जीवनपट में अंतःस्यूत है......यदि प्राचीन भाषाओं का अध्ययन हमारी शिक्षा से लुप्त हो गया या समाज के एक लघुवर्ग में ही सीमित रह गया तो यह एक राष्ट्रीय विपत्ति होगी, यह प्रत्येक विचारशाखा के लोगों का मत है। ......जो उत्तम बुद्धि की वृद्धि में सहायक होता है वह (अध्ययन) हमारी जनता में किसी को अलभ्य नहीं होना चाहिए।

(पृ० २६८—अनूदित)

यहाँ अब यह कहना न होगा कि ये विचार इँगलैंड में ग्रीक और लैटिन के पक्ष की अपेक्षा भारत में संस्कृत के पक्ष में कहीं अधिक सत्य हैं।

भारत में संस्कृत का महत्त्व स्वयंसिद्ध है। यह भारत की 'भारती' रह चुकी है। अब प्रधानभाषा के रूप में नहीं तो प्राचीन-भाषा, आकरभाषा के रूप में यह अवश्य सम्मान्य है। इसके द्वारा भारत की राष्ट्रीय एकता का युग युग से निर्वाह हुआ था और इसका ध्यान रखकर यह निर्वाह अब भी सुकर है। राष्ट्रीय संस्कार तथा व्यवहार का इसके सम्मान में ही हित है।

हम सविश्वास आशा करते हैं कि भारत के राष्ट्रीय पुनर्विधान के अधिकारी-गण राष्ट्रीय शिक्षा-दीक्षा में एवं राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रवाङ्मय के निर्माण में प्राचीन भारती संस्कृत के महत्त्व का ध्यान रखकर राष्ट्रहित के विचार से ही इसका समुचित मान करेंगे।

भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली

भारत-सरकार ने अब "भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली के निश्चय" की ओर ध्यान दिया है। उसकी शिक्षा की केंद्रीय परामर्शदात्री परिषद् ने ६ और ७ मई १६४० ई० को शिमला में हुई अपनी पाँचवीं वार्षिक बैठक में इस विषय का भी विचार किया था। परिषद् के विचार का आधार इस विषय की एक योजना थी जो श्री बी० एन० सील, आइ० ई० एस०, बंबई की जन-शिक्षा के डिप्टी डाइरेक्टर ने बंबई सरकार के कहने पर प्रस्तुत की थी। उस योजना की मुख्य बातें ये हैं :

१—समस्त भारत के लिये एक समान वैज्ञानिक शब्दावली निश्चित हो जाय;

२—अखिलभारतीय वैज्ञानिक शब्दावली का प्रश्न पहले एक अधिकारी अखिलभारतीय समिति के आगे उपस्थित किया जाय ;

३—वैज्ञानिक शब्दावली का मुख्य और समान भाग जो प्रमुख भारतीय भाषाओं के लिये प्रस्तुत होगा वह व्यापक रूप से अँगरेजी शब्दावली से ग्रहण किया जाय ;

४—प्रत्येक भारतीय भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली में निम्नलिखित तीन मुख्य भाग हों—

(क) मुख्य अँगरेजी शब्दावली जो व्यवहारतः समस्त भारत के लिये समान शब्दावली होगी,

(ख) किसी भारतीय भाषा के लिये विशेष शब्दावली—एक बहुत छोटा भाग,

(ग) संस्कृत या फारसी-अरबी शब्दावली—संख्या में अपेक्षाकृत छोटी—भाषा संस्कृतमूलक है या द्राविड़मूलक, उर्दू है या पश्तो या सिंधी, इस विचार से ली गई या गढ़ी गई ;

५—विभिन्न वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय विषयों के लिये—जैसे गणित, शरीर-पंजर-विज्ञान, शरीरवृत्ति-विज्ञान, अर्थशास्त्र, वैज्ञानिक दर्शन, आधुनिक तर्कशास्त्र इत्यादि—प्रामाणिक शब्दावलियाँ निश्चित हो जायँ ;

६—जैसे ही वैज्ञानिक शब्दावली की सूचियाँ स्वीकृत हो जायँ, प्रमुख भारतीय भाषाओं में शिक्षा की सभी श्रेणियों के लिये पाठ्य पुस्तकें लिखाई जायँ और सभी अन्य शब्दावलियाँ अवहेलित की जायँ;

७—प्रांतीय सरकारों से कहा जाय कि वे ४ (ख) की शब्दावली को निश्चित और प्रमाणित करने के लिये विद्वानों की छोटी प्रतिनिधि समितियाँ बनाएँ; और—

८—शिक्षा की केंद्रीय परामर्शदात्री परिषद् एक स्थायी विचार-समिति बनाए जिसके मत सभी शिक्षाधिकारियों और शिक्षा-संस्थानों को अंततः अवश्य मान्य हों।

भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली के प्रस्ताव को परिषद् ने स्वीकृत किया, किंतु उसे यह प्रतीत हुआ कि प्रस्तुत प्रयोजन अँगरेजी शब्दावली के ग्रहण से उत्तमत्ता से सिद्ध हो सकेगा। परंतु इस विषय के विस्तृत अनुसंधान के लिये परिषद् ने निम्नलिखित समिति नियुक्त की और इसे यथावश्यकता और सदस्य चुन लेने का अधिकार दिया :

१—महामाननीय सर अकबर हैदरी, एल्-एल० डी०, निजाम सरकार की शासन-परिषद् के प्रधान—सभापति।

२—माननीय दीवानबहादुर सर के० रामुन्नी मेनन।

३—श्री एस० सी० त्रिपाठी, आइ० ई० एस०, उड़ीसा की जनशिक्षा के डाइरेक्टर।

४—श्री डब्ल्यू० एच० एफ० आर्मस्ट्रॉंग, आइ० ई० एस०, पंजाब की जनशिक्षा के डाइरेक्टर।

५—डाक्टर सर जियाउद्दीन अहमद।

६—पंडित अमरनाथ झा, प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर।

७—डाक्टर यू० ए० दाऊदपोटा, एम० ए०, पी-एच० डी०, सिंध की जनशिक्षा के डाइरेक्टर।

८—भारत सरकार के शिक्षा-कमिश्नर।

इस समिति के कार्य-विवरण का, प्रस्तुत होने पर, परिषद् परीक्षण करेगी।

उपर्युक्त सूचना के लिये हम सितंबर १९४० ई० के 'माडर्न रिव्यू' के ऋणी हैं।

समिति की बैठक १५ और १६ अक्तूबर १९४० ई० को हैदराबाद (दक्षिण) में हुई है। उसमें ये चार और सदस्य चुन लिए गए हैं :

१—डाक्टर अब्दुल हक, अखिलभारतीय अंजुमन-तरक्कीए-उर्दू दिल्ली के मंत्री।

२—डाक्टर एस० एस० भटनागर, ओ० पी० ए०, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान के डाइरेक्टर।

३—डाक्टर मोजफ्फरउद्दीन कुरैशी, उस्मानिया विश्वविद्यालय के रसायन के आचार्य और रसायन विभाग के अध्यक्ष।

४—नवाब मेहदी यार जंग बहादुर, उस्मानिया विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर और निजाम-सरकार के शिक्षा-सदस्य—विशेष रूप से निमंत्रित।

इस प्रकार समिति में पूरे बारह सदस्य हो गए हैं। उस बैठक का और विवरण अभी हमें उपलब्ध नहीं है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली का निश्चय राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। इसका संपादन भारतीय दृष्टि से व्यापक और गंभीर विचार के द्वारा होना चाहिए। यह कार्य देश के कितने ही अधिकारी व्यक्तियों और संस्थाओं ने, जब से भारत की आधुनिक भाषाओं में वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय रचनाएँ होने लगीं तब से ही, किया है। उन्होंने प्रथमत: अपनी अपनी प्रादेशिक भाषाओं के लिये ही शब्दावलियाँ निश्चित की हैं, परंतु भारतीय दृष्टि रखने के कारण वे उन्हें शेष भारतीय भाषाओं के लिये भी बहुत कुछ समान रूप से उपयोगी बना सके हैं। क्योंकि भारतीय भाषाओं में प्रादेशिक विभिन्नताएँ होते हुए भी एक मौलिक समानता है। किंतु, सम्मिलित और संघटित कार्य न होने के कारण, उन शब्दावलियों का अखिलभारतीय महत्त्व ही रहा है, उनसे अखिलभारतीय व्यवहार का निश्चय नहीं हो सका है। भारत-सरकार की शिक्षा-परिषद् ने अब इस ओर ध्यान दिया है। सरकारी परिषद् के द्वारा अपेक्षित कार्य संपन्न हो जायगा, इसका हमें

सहज विश्वास करना चाहिए और हर्ष होना चाहिए। परंतु सरकारी परिषद् की नीति का जैसा परिचय हमें उपर्युक्त सूचनाओं से मिला है उससे बहुत खेद है कि हमें उसके प्रति अविश्वास होता है और क्षोभ होता है।

पहले तो सरकारी परिषद् की मुख्य धारणा, कि भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोजन अँगरेजी शब्दावली के ग्रहण से उत्तमता से सिद्ध हो सकेगा, भारत की राष्ट्रीय एकता, और उसकी प्रादेशिक भाषाओं की मौलिक समानता और राष्ट्रीय आकरभाषा की महत्ता का अनादर और अवमान करती है। यह धारणा भ्रांत है। अँगरेजी वैज्ञानिक शब्दावली वैज्ञानिक शोध के लिये उपयोगी हो सकती है। परंतु मुख्य प्रश्न वैज्ञानिक शोध का नहीं, भारतीय भाषाओं में साधारण वैज्ञानिक शिक्षा-दीक्षा तथा वाङ्मयनिर्माण की व्यवस्था के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली का है, जिसके निश्चित हो जाने से वैज्ञानिक शोध भी स्वतंत्रता से हो सकेगा। देश देश ने अपनी, स्वतंत्र वैज्ञानिक शब्दावली निश्चित की है। अत: भारत में यह कार्य जैसा हमने ऊपर ही कहा है, भारतीय दृष्टि से व्यापक और गंभीर विचार के द्वारा होना चाहिए। भारत में दो ही परिवार की भाषाएँ गण्य हैं—आर्य और द्राविड़। बहुत प्राचीन युग से ये दो परिवार इस देश में साथ रहे हैं। आर्य परिवार की संस्कृत भाषा युग युग से भारत की प्रधान भाषा, राष्ट्रभाषा थी। और युग युग से ही यह भारत की राष्ट्रीय आकरभाषा है, क्योंकि बहुतेरी भारतीय भाषाएँ तो इससे विकसित ही हुई हैं और शेष प्रभावित रही हैं। संस्कृत के महत्त्व का स्मरण हमने पिछली टिप्पणी में किया है। इसके ध्यान से ही भारत की आधुनिक राष्ट्रभाषा का स्वरूप बनेगा और इससे ही राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली, वह वैज्ञानिक हो या शास्त्रीय, तैयार होगी। इसके विरुद्ध दो मुख्य शंकाएँ खड़ी की जाती हैं—देश में अरबी-फारसी से प्रभावित भाषाओं के रहते संस्कृत से ही कैसे पारिभाषिक शब्दावली तैयार हो

सकती है और संस्कृत से ही कैसे सभी आधुनिक पारिभाषिक शब्द लिए या गढ़े जा सकते हैं। इनका स्पष्ट समाधान यह है कि भारत में आर्य और द्राविड़ परिवार के बाहर अरबी अर्थात् सेमिटिक परिवार की कोई भाषा नहीं है, पश्तो भी नहीं—उर्दू की तो बात ही क्या जो हिंदी की ही एक कृत्रिम शैली है। अरबी-फारसी का अभारतीय प्रभाव इन दो भाषाओं या बोलियों को छोड़कर, जिनका क्षेत्र बहुत छोटा है, अन्यत्र नगण्य है। भारत की शेष प्रादेशिक भाषाओं के लिये संस्कृत ही आकरभाषा है। यह उनकी मौलिक समानता है। देश की बहुतेरी प्रमुख भाषाओं में तो स्वभावतः संस्कृतप्रधान पारिभाषिक शब्दावलियाँ चलती आई हैं; कितनों ही में, जैसे हिंदी, बँगला, मराठी, गुजराती और शायद तामिल में भी आधुनिक वैज्ञानिक शब्दों के अच्छे संग्रह प्रकाशित हैं। रही संस्कृत से ही सभी पारिभाषिक शब्दों के ग्रहण या निर्माण की बात। इसमें यह ध्यान रखना है कि एक तो संस्कृत बड़ी संपन्न भाषा है, इसमें कितने ही शब्द तैयार मिल जाते हैं और शेष इससे गढ़े जा सकते हैं। योरप में प्रचलित वैज्ञानिक शब्दावलियाँ प्रायः ग्रीक से गढ़ी ही गई हैं। (ग्रीक संस्कृत की सगी छोटी बहिन है।) दूसरे कुछ ऐसे वैज्ञानिक शब्द, जो बहुत ही प्रचलित हैं और जिनके संस्कृत प्रतिशब्द यथेष्ट उपयुक्त नहीं बनते, संस्कृत रूप में स्वीकृत किए जा सकते हैं। संस्कृत वाङ्मय में ग्रीक और अरबी के भी शब्द संस्कृत बनकर व्यवहृत हुए हैं। सारांश यह कि जैसे भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी होनी चाहिए वैसे ही राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत होनी चाहिए—'हिंदुस्तानी' नहीं, अँगरेजी नहीं। सांप्रदायिक भाव तथा अदूरदर्शी धारणा को छोड़, हमारी दृष्टि में, कोई तर्क इस सिद्धांत का बाधक नहीं है।

सरकारी परिषद् के प्रति अविश्वास और क्षोभ का दूसरा और बड़ा कारण उसके द्वारा उपर्युक्त समिति की नियुक्ति है। हमने ऊपर जो उसकी धारणा का निराकरण कर उस सिद्धांत का उपस्थापन किया है वह इस समिति के आगे तो व्यर्थ है। हम समिति के

सदस्यों का निरादर नहीं करते। हम तो उस मूलभूत योजना के अनुसार इस विषय के विस्तृत अनुसंधान के लिये एक अधिकारी अखिल-भारतीय समिति की आवश्यकता समझते हैं और इस समिति को देखकर हताश होते हैं। पहले आठ सदस्यों के चुनाव में सरकारी जनशिक्षा-विभाग के चार अधिकारियों के रखे जाने से समिति सरकारी तो सिद्ध हुई थी, परंतु उनके तथा शेष तीन सदस्यों और सभापति महोदय के रहने से भी यह अधिकारी और अखिलभारतीय नहीं हुई थी। क्योंकि इसके सदस्यों का चुनाव भारतीय भाषाओं की विशेषज्ञता और प्रादेशिक प्रतिनिधित्व की दृष्टि से नहीं हुआ था, यह तो स्पष्ट है; पर पिछले चार अतिरिक्त सदस्यों के चुनाव से तो कुछ और ही अर्थ की व्यंजना होती है। बारह सदस्यों की समिति में छः का उर्दू क्षेत्र का होना (उनमें चार का उस्मानिया विश्वविद्यालय से, एक का अलीगढ़ विश्वविद्यालय से और एक का अंजुमन-तरक्कीए-उर्दू से संबद्ध होना); एक का ही हिंदी-क्षेत्र का होना; बँगला, मराठी, गुजराती, तामिल जैसी प्रमुख भाषाओं के क्षेत्र से एक का भी न होना; दो विदेशियों का होना; और देश के अधिकारी विद्वानों, विद्वत्सभाओं और विश्वविद्यालयों की पूरी अवहेला होना—ये बातें इस विषय में भी सांप्रदायिक पक्षपात की व्यंजना करती हैं, वैसे ही जैसे 'हिंदुस्तानी' के विषय में। क्या हम समझें कि अँगरेजी की आड़ में अरबी के लिये यह कूटयोजना चल रही है? और यह भारत-सरकार के द्वारा ही? हम मानना नहीं चाहते कि भारत-सरकार यह घोर अन्याय कर रही है। अत: हम उसका ध्यान अपने ऊपर के वक्तव्य की ओर दिलाते हुए अब भी आशा करते हैं कि वह इस भारतीय महत्त्व के कार्य में शीघ्र उचित सुधार कर न्याय्य नीति का अनुसरण करेगी। आशा है वह इस विषय में नागरीप्रचारिणी सभा के अधिकार को समझेगी।

—कृ।

सभा की प्रगति

पुस्तकालय

श्रावण १९९७ के अंत में पुस्तकालय के सहायकों की संख्या १०७ थी। तब से कार्तिक के अंत तक १५ सहायक नए हुए और ९ सहायकों ने अपने नाम कटा लिए। अब कार्तिक के अंत में सहायकों की संख्या ११३ है।

श्रावण के अंत में पुस्तकालय में हिंदी की छपी हुई पुस्तकों की संख्या १५४३२ थी। इस समय वह १५६०२ है। जिन लेखकों तथा प्रकाशकों ने अपनी पुस्तकें सभा को बिना मूल्य दी हैं उन्हें सभा हृदय से धन्यवाद देती है।

श्रावण से कार्तिक तक ३ मास में पुस्तकालय ६२ दिन खुला रहा। अब सभा की प्रबंध-समिति ने यह निश्चय किया है कि पुस्तकालय की साप्ताहिक छुट्टी सोमवार के बदले शनिवार को रहा करे। प्र० स० ने यह भी निश्चय किया है कि मासिक, त्रैमासिक आदि पत्रिकाएँ सहायकों को घर ले जाने के लिये न दी जायँ।

कलाभवन

सौर भाद्रपद २ को संयुक्तप्रांतीय सरकार के परामर्शदाता डा० पन्नालाल, आइ० सी० एस० राजघाट से प्राप्त वस्तुओं का निरीक्षण कर बहुत प्रसन्न हुए।

राजघाट की रेलवे की खुदाई में पुरातत्त्वविभाग की ओर से कोई देखरेख न रहने के कारण प्राचीन महानगरी के ध्वंसावशेष शीघ्रता से नष्ट किए जा रहे थे। इस बात की ओर उक्त विभाग का ध्यान आकर्षित कराने के लिये कलाभवन से श्री विजयकृष्ण उक्त विभाग के डाइरेक्टर जनरल रावबहादुर काशीनाथ दीक्षित के पास दिल्ली भेजे गए। फलस्वरूप उन्होंने काशी आकर अपने विभाग के संरक्षण में खुदाई कराने की आज्ञा दे दी। इस खुदाई में निकली

वस्तुएँ दिल्ली भेज दी गई हैं और डाइरेक्टर जनरल महोदय ने समुचित परीक्षा और अध्ययन के बाद उन्हें कलाभवन में भेज देने का निश्चय किया है। डाइरेक्टर जनरल महोदय ने अब यह नीति निर्धारित की है कि सारनाथ संग्रहालय में केवल सारनाथ से प्राप्त वस्तुएँ और बनारस तथा आस पास के स्थानों से प्राप्त वस्तुएँ भारत-कलाभवन में रखी जायँगी। इस नीति के अनुसार पुरातत्त्व विभाग ने सारनाथ संग्रहालय से बहुत सी मूर्तियाँ तथा इमारती पत्थर भारत-कलाभवन को देने की कृपा की है। ये सब वस्तुएँ भारत-कलाभवन में आ गई हैं। इनमें गोवर्धनधारी कृष्ण की गुप्तकालीन विशाल मूर्ति बहुत सुंदर, भव्य एवं उत्कृष्ट है। दूसरी श्रेयांस की गुप्तकालीन मूर्ति भी उस समय और शैली का विशिष्ट उदाहरण है। अन्य सब वस्तुएँ भी कलापूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

गत तीन महीनों में प्राप्त वस्तुओं के अध्ययन के लिये पुरातत्त्व-विभाग के अनेक उच्च अधिकारी तथा विशेषज्ञ कलाभवन में आए। इनके अतिरिक्त अनेक संग्रहालयों के संग्रहाध्यक्ष तथा अन्य विशिष्ट कला-प्रेमी विद्वान् और श्रीमान् कलाभवन देखने आए।

चित्रकला विद्यालय

सभा ने यह निश्चय किया है कि श्री अंबिकाप्रसाद दुबे की अध्यक्षता में कलाभवन के अंतर्गत एक चित्रकला-विद्यालय खोला जाय। भवन, सामान आदि के लिये अभीष्ट धन प्राप्त होने पर कार्य आरंभ किया जाय और इसकी व्यवस्था के लिये निम्नलिखित सज्जनों की एक उपसमिति बना दी जाय—

श्री रामनारायण मिश्र — श्री राय कृष्णदास

श्री रामबहोरी शुक्ल — श्री अंबिकाप्रसाद दुबे

हिंदी-प्रचार

हिंदी-प्रचार के लिये श्री चंद्रबली पांडे एम० ए० ने लखनऊ, मेरठ, देहरादून, सहारनपुर, हरद्वार, बरेली आदि स्थानों में यात्रा की। उनके प्रयत्न का अच्छा फल हुआ और बहुत से सभासद भी बने।

बरेली की कचहरी में वहाँ के कुछ उत्साही हिंदी-प्रेमियों ने प्रयत्न करके एक हिंदी लेखक नियुक्त किया है। उसके खर्च के लिये इस सभा ने भी एक वर्ष तक ५) मासिक के हिसाब से सहायता देना स्वीकार किया है।

'हिंदी' (मासिक पत्र)

सभा ने निश्चय किया है कि उसके तत्त्वावधान में हिंदी नाम की एक मासिक पत्रिका निकले जिसका मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा तथा नागरी लिपि का प्रचार तथा उस पर अनेक प्रकार से होनेवाले आघातों से उसकी रक्षा करना होगा। इसकी आर्थिक व्यवस्था से सभा का कोई संबंध न रहेगा, न इसकी नीति का दायित्व सभा पर होगा। इसकी व्यवस्था तथा नीति की देखरेख श्री चंद्रबली पांडे एम० ए० तथा श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम० ए०, एल० टी० करेंगे। इसमें सभा की नीति के विरुद्ध अथवा सभा की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल कोई बात होने पर सभा अपना सहयोग हटा लेगी।

श्री चंद्रबली पांडे इसके संपादक, प्रकाशक और मुद्रक होंगे।

प्रकाशन

सभा ने निम्नलिखित पुस्तकों के छापने का निश्चय किया—

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला में 'मोहन जो दड़ो'; बाला-बख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला में 'राजरूपक'; मनोरंजन पुस्तक-माला में 'गुरुद्वार', 'बाल-मनोविकास', 'संत कबीर' (नाटक), 'जीवन के आदर्श', 'रसखान और घनानंद' (दोनों के संशोधित संस्करण) और 'जीवन-रहस्य' (उर्दू पुस्तक का हिंदी अनुवाद); सूर्यकुमारी पुस्तक-माला में 'विश्वसाहित्य में रामचरितमानस' तथा नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला में 'तुलसी-ग्रंथावली' भाग २ (पुनर्मुद्रण)। इनके अतिरिक्त 'शब्द-सागर' खंड ३ तथा 'त्रिवेणी' के भी पुनर्मुद्रण का निश्चय हुआ है।

इनमें 'त्रिवेणी' तो छप चुकी है और 'मोहन जो दड़ो' छप रही है। 'राजरूपक', जो डिंगल साहित्य का एक अमूल्य रत्न है और

जिसका संपादन जोधपुर के पंडित रामकर्ण जी ने किया है, प्रेस में भेज दिया गया है। शेष सभी पुस्तकें धन के दुःखद अभाव में अभी रुकी पड़ी हैं।

'महावंस', जिसका अनुवाद श्री आनंद कौसल्यायन ने पाली से किया था और जिसके छापने का बहुत पहले निश्चय हो चुका था, प्रकाशित न हो सकने के कारण अनुवादक को लौटा दिया गया।

बा० ब्रजरत्नदास बी० ए०, एलू-एल० बी० (काशी) ने अपनी संपादित पुस्तक 'सत्यहरिश्चंद्र' की १६०० छपी प्रतियाँ सभा को इसलिये कृपा कर भेंट की हैं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र की पुस्तकों की एक माला इसी पुस्तक से आरंभ करके निकाली जाय। वे सभा के लिये इस माला की पुस्तकों का संपादन बिना किसी पारिश्रमिक के कर दिया करेंगे। इसके लिये सभा उनकी कृतज्ञ है।

सभा की अर्धशताब्दी और
महाराज विक्रमादित्य की द्विसहस्राब्दी

विक्रमीय द्विसहस्राब्दी की पूर्ति का समय अब निकट आ रहा है। उसी समय सभा के ५० वर्ष भी पूरे हो जायँगे। इस महान अवसर पर सभा अपनी अर्धशताब्दी तथा विक्रमीय द्विसहस्राब्दी साथ साथ मनाएगी। सभा ने निश्चय किया है कि इस अवसर पर एक बृहद् महोत्सव किया जाय और भारत की सभी भाषाओं के विद्वानों की एक सभा की जाय। सभी लेखकों और कवियों से प्रार्थना की जाय कि वे इस विषय पर अपने अपने मंतव्य प्रकट करें और उन मंतव्यों को एक बड़े स्मारक ग्रंथ में प्रकाशित किया जाय तथा श्रीमानों की सहायता से एक शानदार स्मारक बनवाया जाय।

सभा देश के श्रीमानों, कवियों, लेखकों तथा विद्वानों से विशेष रूप से इस आनेवाले महोत्सव में सफलता के लिये सहयोग की प्रार्थना करती है।

सूचना—१ ज्येष्ठ से ३० कार्त्तिक १९९७ तक सभा में २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली अगली नामावली के साथ अगले अंक में प्रकाशित होगी।

—सं०।

हिंदी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के नए प्रकाशन

१—**प्रेमघनसर्वस्व (प्रथम भाग)**—व्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की संपूर्ण कविताओं का सुसंपादित और संपूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४॥) ।

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिंदी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ कविताएँ और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। संपादक श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २) ।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कविताएँ तथा उनकी साहित्यकृतियों की विस्तृत आलोचना। संपादक श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १॥) ।

४—**संक्षिप्त हिंदी साहित्य**—हिंदी साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिंदी साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक पंडित ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ॥) ।

५—**चित्ररेखा**—हिंदी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देव पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। मूल्य १॥) ।

आधुनिक कवि—सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारंभ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के संबंध में प्रकाश डाला है। मूल्य १॥) ।

सम्मेलनपत्रिका

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की यह मुखपत्रिका है। इसमें प्रति मास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिंदी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके संपादक साहित्य-मंत्री श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १) ।

पता—
साहित्यमंत्री,
हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) **मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था**—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०. एल् एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) **मध्यकालीन भारतीय संस्कृति**—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) **कवि-रहस्य**—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मू० १)

(४) **अरब और भारत के संबंध**—लेखक, मौलाना सैयद सुलेमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) **हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता**—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) **जंतु-जगत्**—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) **गोस्वामी तुलसीदास**—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) **सतसई-सप्तक**—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मू० ६)

(९) **चर्म बनाने के सिद्धांत**—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) **हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट**—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, मूल्य १।)

(११) **सौर परिवार**—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) **अयोध्या का इतिहास**—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, सचित्र। मूल्य ३)

(१३) **घाघ और भड्डरी**—संपादक, पं० रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) **वेलि क्रिसन रुकमणी री**—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) **चंद्रगुप्त विक्रमादित्य**—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) **भोजराज**—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) **हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी**—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुल्फ़ज्ल। मूल्य १।)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकर-सहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत व्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरि रामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २) ; सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० मूल्य १।)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव, मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य (भाग १)—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४।); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ॥)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्०-एल० बी०। मूल्य १)

प्राप्ति-स्थान—हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद।

आपको यह जानना ही चाहिए

कि

नए विचार
नई भावनाएँ और
राष्ट्रनिर्माणकारी नई क्रांति
का संदेश देनेवाला
'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र, [संपादक हरिभाऊ उपाध्याय]
वार्षिक मूल्य २) और मंडल के ग्राहकों से १)

तथा

सस्ता साहित्य मंडल का नया प्रकाशन

१—बापू—ले० घनश्यामदास बिड़ला, १३ सुन्दर चित्रों सहित दाम ।॥) सजिल्द १।), हाथ के कागज पर २), महात्मा गाँधी की छोटी से छोटी और महान् से महान् बातों का नजदीक से तलस्पर्शी अध्ययन।

२—खादी मीमांसा—ले० बालू भाई मेहता, मूल्य १॥), खादी पर लिखी गई गिनी-चुनी पुस्तकों में से प्रधान पुस्तक।

३—विनोबा और उनके विचार—मूल्य ।।) प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबा के जीवनमय विचार।

४—समाजवाद पूँजीवाद—मूल्य ।॥), बर्नार्ड शा की Intelligent women's guide to socialism and capitalism के आधार पर लिखी।

५—मेरी मुक्ति की कहानी—मूल्य ।।) महर्षि टाल्स्टाय के जीवन-संस्मरण और उनकी जीवन-कहानी।

आपके स्थान के खादी भंडारों और प्रधान पुस्तक-विक्रेताओं के पास पहुँच गए हैं।

यदि आप इन पुस्तकों को अभी न खरीद सके हों तो विलंब से पूर्व ही हमें आर्डर भेजिए। संस्करण की समाप्ति की नौबत आ गई है

सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सरकस, नई दिल्ली
शाखाएँ दिल्ली, लखनऊ, इंदौर।

हुआ है। इस देश में आलोचना के सिद्धांतों के बारे में क्या सोचा जा चुका है, रस, रीति, ध्वनि क्या है, उनका दार्शनिक और साहित्यिक स्वरूप क्या है और मानव-जीवन के सनातन मनोभावों के साथ उनका क्या संबंध है, इसको बिना पढ़े जो आलोचक केवल मैथ्यू आर्नोल्ड या वोर्सफोल्ड के विचारों को घोंटकर हिंदी साहित्य की क्रूर समीक्षा करने लग जाते हैं उनका लिखा हुआ साहित्य और चाहे जो हो, लोक की वस्तु नहीं बन सकता; राष्ट्रीय वृद्धि के कीटाणु उसमें नहीं पनप सकते। शब्दों के निर्वचन और व्याकरण या शिक्षा के किन सिद्धांतों का इस देश में पहले विचार हो चुका है, उसकी बारह-खड़ी से भी जो अपरिचित रह जावें, वे लेखक हिंदी के भाषाशास्त्र का विवेचन करते हुए कोरे पश्चिमी ज्ञान की लाठी के सहारे ही चल पावेंगे। इस समय हिंदी की नई वर्णमाला का स्वरूप स्थिर करने के लिये अर्ध एकार और अर्ध ओकार पर खासी बहस देखने में आती है, पर क्या हमें मालूम है कि ईसा से भी कई सौ वर्ष पहले सामवेद की सात्यमुग्रि और राणायनीय शाखाओं के आचार्यों ने अपनी परिषदों में इन दोनों उच्चारणों का ठीक ठीक निर्णय कर दिया था? इस प्रकार के कितने विमर्श भारत के अतीत साहित्य से हमें प्राप्त करने हैं। यूनान के साहित्य और संस्कृति का उत्तराधिकार यूरोप ने प्राप्त किया, अपने आपको उस विद्या-दाय में शामिल करके यूरोप के विद्वान् अपने को धन्य मानते हैं; तो क्या भारतवासी अपने इस ब्रह्मदाय से पराङ्मुख रहकर अपने राष्ट्र के भावी मस्तिष्क या ज्ञान-कोष का स्वस्थ निर्माण कर सकेंगे? कदापि नहीं। हमको तो इस विराट् साहित्य के रोम रोम में भिदकर हिंदी भाषा के द्वारा उनको नए नए रूपों में देखना पड़ेगा। उसके साथ हमारा संबंध आज का नहीं है। वह साहित्य हमारे पूर्वजों के भी गुरुओं का है। अपने राष्ट्रीय नवाभ्युत्थान के समय हम उस मूल्यवान् साहित्य को श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम करते हैं। हिंदी लेखक जब तक इस ऋषि-ऋण से उऋण नहीं होंगे, वे लोक-साहित्य की सृष्टि में पिछड़े रहेंगे! कल्पना कीजिए

कि व्यास की 'शतसाहस्री संहिता' को, जिसे पूर्व लोगों ने श्रद्धा के भाव से 'पंचम वेद' की पदवी दी थी, छोड़कर हम कितने दरिद्र रह जाते हैं! उस 'जय' नामक इतिहास को अथवा आदि-कवि के शब्द-ब्रह्म के नवावतार 'रामायण' को साथ लेकर आगे बढ़ने में हमारा विद्यादाय समृद्ध बन जाता है।

भारत के साहित्यकारों, विशेषतः हिंदी के साहित्य-मनीषियों को चाहिए कि इस नवीन दृष्टिकोण को अपनाकर साहित्य के उज्ज्वल भविष्य का साक्षात् दर्शन करें। दर्शन ही ऋषित्व है। ऋषियों की साधना के बिना राष्ट्र या उसके साहित्य का जन्म नहीं होता।

—कृ।

——

समीक्षा

योग के आधार—श्री अरविंद की 'बेसेज़ आव् योग' (Bases of yoga) नामक अँगरेजी पुस्तक का हिंदी अनुवाद—अनुवादक श्री मदनगोपाल गाडोदिया; प्रकाशक श्री अरविंद ग्रंथमाला, पांडीचेरी, सोल एजेंट्स दक्षिणभारत हिंदी-प्रचार सभा, त्यागरायनगर, मद्रास; मूल्य २)।

योग व्यावहारिक मनोविज्ञान है जो मनुष्य को पूर्ण बना देता है। श्री अरविंद ने अपने पांडीचेरी आश्रम में योग की जिस कला का विकास किया है वह अभूतपूर्व है। इस योग में प्राचीन आध्यात्मिक साधनाओं की आवश्यक शक्ति तो है ही पर यह उनके भी परे जाता है और उनको पूर्ण बनाता है। साधारणतया, योग से लोग यही समझते हैं कि यह मनुष्य को जीवन से उदासीन कर देता है और उसको एकांतवासी या वैरागी बना देता है। परंतु श्री अरविंद के योग का उद्देश्य यह नहीं है। यद्यपि मानवजाति के वर्त्तमान जीवन की अपूर्णताओं पर उनकी दृष्टि प्राचीन योगियों जितनी ही है, तथापि पूर्णता की खोज में वे जीवन से भागते नहीं, बल्कि वे चाहते हैं कि मानव जाति की बुराइयों और अपूर्णताओं को दूर कर दें, जिससे मानव-जीवन एक दिव्य जीवन में परिणत हो जाय। वे कहते हैं—"इस योग की सबसे पहली शिक्षा यह है कि जीवन और उसकी कठिनाइयों का शांत मन, दृढ़ साहस और भागवत शक्ति पर पूर्ण भरोसा रखकर मुकाबला किया जाय।"

प्राचीन योगों के अनुसार साधक को अपनी ही चेष्टा और तपस्या के द्वारा हठयोग, राजयोग और तांत्रिक विधियों आदि का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना होता है। परंतु श्री अरविंद के योग में जिस एकमात्र प्रयास की आवश्यकता है वह यह है कि साधक

पूर्ण रूप से अपने आपको भगवती माता के वरद हस्तों में सौंप दे। वे कहते हैं—"योगी, संन्यासी या तपस्वी बनना यहाँ का ध्येय नहीं है। यहाँ का ध्येय है रूपांतर और यह रूपांतर उसी शक्ति के द्वारा हो सकता है जो तुम्हारी अपनी शक्ति से अनंतगुण महान् है। यह तभी संभव है जब तुम भगवती माता के हाथों में सचमुच एक बालक की भाँति बनकर रहो।" "भागवत-उपस्थिति, स्थिरता, शांति, शुद्धि, शक्ति, प्रकाश, आनंद और विस्तीर्णता आदि ऊपर तुममें अवतरण करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऊपरी तल के पीछे रहनेवाली इस अचंचलता को तुम प्राप्त कर लो तो तुम्हारा मन भी अधिक अचंचल हो जायगा। फिर इस अचंचल मन के द्वारा तुम पहले शुद्धि और शांति का और बाद में भागवत शक्ति का अपने में आवाहन कर सकोगे......तुम तब यह भी अनुभव करोगे कि वह शक्ति तुममें इन प्रवृत्तियों को परिवर्तित करने के लिये और तुम्हारी चेतना का रूपांतर करने के लिये कार्य कर रही है। उसके इस कार्य में तुम्हें माता की उपस्थिति और शक्ति का ज्ञान होगा। एक बार जहाँ यह हो गया तब बाकी का सब कुछ केवल समय का और तुम्हारे अंदर तुम्हारी सत्य एवं दिव्य प्रकृति के उत्तरोत्तर विकास होने का ही प्रश्न रह जायगा।"

साधन-मार्ग में जो व्यावहारिक समस्याएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं उन्हें गुरु साधक-विशेष की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार हल करते हैं। श्री अरविंद ने अपने शिष्यों को उनके प्रश्नों के उत्तर में जो पत्र लिखे, उनमें से कुछ का संग्रह प्रस्तुत पुस्तक में है और ये पत्र अनेक व्यावहारिक विषयों पर प्रकाश डालते हैं—जैसे कि श्रद्धा, समर्पण, कठिनाई, आहार, काम-वासना, अवचेतना, निद्रा, स्वप्न और रोग। यह पुस्तक इस तरह से तैयार की गई है कि योग-साधन के जिज्ञासुओं को इससे पर्याप्त लाभ हो सके।

आजकल एक ऐसी प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है कि मानव-जीवन और मानव समाज को आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित मानव प्रकृति के आधार पर पुनः संघटित किया जाय। अवश्य

ही यह प्रवृत्ति उचित मार्ग की ओर है, किंतु अभी तक यह नवीन मनोविज्ञान बहुत गहराई में नहीं उतर सका है। श्री अरविंद कहते हैं—"यह नवीन मनोविज्ञान मुझे तो ऐसा दिखाई देता है जैसे कि बालक यथोचित रूप से वर्णमाला भी नहीं किंतु उसके किसी संक्षिप्त रूप को याद कर रहे हों और अवचेतना तथा रहस्यमय, गुप्त अति-अहंकार रूपी अपने क-ख-ग-घ को मिला मिलाकर रखने में मग्न हो रहे हों और यह समझ रहे हों कि उनकी यह पहली किताब जो एक धुँधला सा आरंभ है, यही ज्ञान का वास्तविक प्राण है।" मनोविश्लेषण यह बताता है कि मनुष्य के जो निम्नतर आवेश हैं—उसकी इच्छा, कामना, लालसा, क्रोध, ईर्ष्या, डाह, काम-वासना आदि—वे उसकी प्रकृति में निहित हैं; यदि तुम उनका निग्रह करो तो वे नष्ट नहीं होंगे, बल्कि अवचेतना में छिपे हुए पड़े रहेंगे और आक्रमण करने के लिये उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करते रहेंगे। अथवा यदि निग्रह बहुत अधिक मात्रा में होगा तो इससे स्वयं जीवन-शक्ति ही नष्ट हो जायगी। अतः उनका यह सिद्धांत है कि यदि मानव-जाति को जीवित रहना और उन्नति करना है तो उसे अपने निम्नतर आवेशों को स्वतंत्र रूप से क्रीड़ा करने देना होगा। जिस सैन्यवाद का आज संसार में दौर-दौरा है उसकी तह में यही सिद्धांत भरा पड़ा है। जर्मनों ने तो इस बात को खुले तौर पर कहा है कि युद्ध और उसकी तैयारी के द्वारा ही कोई जाति बलवान् और तेजस्वी रह सकती है और संसार के अन्य सभी राष्ट्र इसी सिद्धांत का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं, फिर चाहे वे इस बात को स्वीकार करें या नहीं। और इस बात से इनकार भी नहीं किया जा सकता कि इसमें कुछ सत्य अवश्य है। प्राचीन यूनान के इतिहास को देखिए जहाँ उन्नतर नैतिक और आध्यात्मिक जीवन की खोज में अहिंसा को और जीवन-आवेगों का कठोर निग्रह करने की शिक्षा दी जाती थी। मनोविश्लेषण इस भाव की पुष्टि करता है कि मानव सभ्यता की एक सीमा है और वह इस सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकती। जीवन के बाह्य संघटन में,

शासन-विधान में और उत्पादन और वितरण की पद्धति में कितना ही फेर-फार क्यों न किया जाय, किंतु जब तक कामना, लालसा आदि के आवेश मानव-प्रकृति में मौजूद हैं तब तक अत्याचार, शोषण, और युद्ध जारी रहेंगे और यदि मानव-जाति इन आवेगों को नष्ट कर दे तो वह सफलतापूर्वक आत्महत्या ही करेगी। परंतु योग मानवजाति के संबंध में इस प्रकार के निराशापूर्ण विचार नहीं रखता। शांति-वादियों और नीतिवादियों में जो दोष है वह उस आदर्श में नहीं है जो उन्होंने मनुष्य के सामने रखा है बल्कि वह केवल अहिंसा के भाव का प्रचार करने और मनुष्य के मन को शिक्षित बनाकर शांति और सामंजस्य के साम्राज्य की स्थापना करने की उनकी पद्धति में है। क्योंकि आवेश, जिनके कारण युद्ध होता है और मनुष्य-जीवन में पाप घुस आते हैं, अवचेतना में जड़ जमाकर बैठे हुए हैं और सत्ता के इस भाग पर मन और तर्क का जरा भी नियंत्रण नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य बहुधा अपनी इच्छा के विपरीत भी पाप करते हैं और राष्ट्र इच्छा न रहते हुए भी युद्ध में प्रवृत्त होते हैं। परंतु योग अव-चेतना को शुद्ध करने और मानव-प्रकृति में से इन जहरीले पौधों को उखाड़ फेंकने और वहां शांति, सामंजस्य, प्रकाश, शक्ति और आनंद से पूर्ण आध्यात्मिक दिव्य जीवन की नींव की स्थापना करने के लिये सच्ची पद्धति का दिग्दर्शन कराता है। यह काम जब कुछ व्यक्ति सफलतापूर्वक कर सकेंगे तब वे दूसरों पर अपना आध्या-त्मिक प्रभाव डालेंगे और यह प्रभाव क्रमशः समस्त मानव-जाति पर पड़ेगा। तब मानव-जीवन, मानव-समाज अपना स्थिर आधार आत्मा में बनावेगा और पृथ्वी पर स्वर्ग के उतर आने का स्वप्न चरितार्थ होगा।

यह संतोष की बात है कि फ्रांस में आज योग और अध्यात्म-संबंधी साहित्य का ही सबसे अधिक प्रचार है और इनमें भी श्री अर-विंद की 'योग के आधार' और 'योग-प्रदीप' पुस्तकों के फ्रेंच अनुवाद विशेषतः प्रमुख हैं। इससे इस बात का पता चलता है कि बाह्य रूप चाहे जो हो, पर मनुष्य का हृदय उचित स्थान पर ही है। श्री अरविंद

जिस भाषा में योग-संबंधी विषय पर लिखते हैं, वह एक बहुत ऊँची भूमिका से आती है। उसकी आध्यात्मिक शक्ति की अनुवाद में रक्षा करना संभव नहीं, फिर भी प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है और इसके लिये मैं अनुवादक महोदय का अभिनंदन करता हूँ। इससे श्री अरविंद ने जो योग-मार्ग संसार को बताया है उसके समझने में हिंदी-भाषा-भाषियों को बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

—रामचंद्र वर्मा

गोरखनाथ एंड मिडीवल हिंदू मिस्टिसिज्म—लेखक और प्रकाशक डा० मोहनसिंह, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, ओरिएंटल कालेज, लाहोर; मूल्य १५)।

जिज्ञासा की अपेक्षा विज्ञापन को अधिक महत्त्व मिल जाने के कारण अनुसंधान के क्षेत्र में सर्वत्र उतावली सी दिखाई पड़ती है। जहाँ कहीं कोई नवीन सामग्री हाथ लगी कि उसका चट प्रकाशन आवश्यक समझा गया, नहीं तो कल वह किसी और ही की हो रहेगी और जन-समाज में उसका नाम उजागर न कर किसी और ही को खोज का तिलक लगाएगी। अतएव हम देखते हैं कि डाक्टर मोहनसिंह जैसा श्रमी शोधक भी इस प्रकार की उतावली का शिकार हो गया है और अपने ग्रंथों में कुछ चटपट का विधान कर गया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक में भी यही बात है। इसमें अध्ययन की अपेक्षा चयन या उद्धरणी कहीं अधिक है। यह सिद्धांत नहीं, बल्कि एक सहायक के रूप में हमारे सामने आती है और कुछ नाथपंथ की यात्रा का मार्ग दिखा देती है। संबल के रूप में कुछ सामग्री भी जुटा देती है। डाक्टर सिंह की यह पुस्तक केवल इसी दृष्टि से उपयोगी और उपादेय है।

डाक्टर सिंह ने अँगरेजी जनता के लिये सामग्री एकत्र कर भूमिका, प्रस्तावना, नोट आदि जो कुछ लिखा है वह महत्त्व का होने पर भी अस्त-व्यस्त है। आदि से अंत तक उसमें कोई व्यवस्था नहीं

दिखाई देती। पुस्तक का नाम भी यथार्थ नहीं कहा जा सकता। उसका संकेत अतिव्यापक है, साथ ही कुछ भ्रामक भी।

डाक्टर सिंह की प्रकृत पुस्तक में सबसे बड़ा दोष यह है कि संस्कृत तथा भाषा के शब्दों के लिये केवल रोमन लिपि का व्यवहार किया गया है, जिसके कारण शब्दों का सच्चा रूप सामने नहीं आ सकता। पाठक व्यर्थ की उलझन में फँसकर हैरान होंगे और फिर भी कुछ साफ साफ समझ न पायँगे। सांकेतिक शब्दों की व्याख्या भी कुछ ठीक नहीं हो पाई है।

पुस्तक में कहीं कहीं प्रसंगवश या योंही कुछ ऐसी बातें भी कह दी गई हैं जो बेतरह खटकती हैं। डाक्टर सिंह का यह दावा कि 'पद्मावत' 'सुरति शब्द' की 'एलोगरी' है तथा सिद्धियाँ ८ नहीं बल्कि १२ होती हैं विचित्र और चिंत्य है।

जो हो, इतना तो निर्विवाद है कि डाक्टर सिंह ने प्रकृत पुस्तक प्रस्तुत कर गोरखनाथ तथा उनके अनुयायियों या हमजोलियों के अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत कर दी है और बहुत कुछ उसकी एक रूपरेखा भी खड़ी कर दी है।

माना कि पुस्तकालयों की दौड़धूप तथा पांडुलिपियों की प्राप्ति में बहुत व्यय पड़ा होगा और उनके संशोधन में श्रम भी कुछ कम न पड़ा होगा, फिर भी इस छोटी सी पुस्तिका का मूल्य जनसामान्य के लिये अधिक ही है। संभवतः यह है भी उनके लिये नहीं। हर्ष की बात है कि डाक्टर सिंह ने इसका मूल्य २५) से घटा कर १५) कर दिया है।

अस्तु, हम डाक्टर मोहन सिंह जी के श्रम तथा अध्यवसाय की प्रशंसा कर उनकी इस कृति का स्वागत करते हैं।

—चंद्रबली पांडे, एम्० ए०।

———

कामुक—अनुवादक चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र, बी० ए०; प्रकाशक नवयुग-पुस्तक-भंडार, बहादुरगंज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या १४८; मूल्य १।)।

यह काव्यग्रंथ अँगरेजी साहित्य के महाकवि मिल्टन के 'कोमस्' का भावानुवाद है। एक भाषा की रचना का दूसरी भाषा में अनुवाद करना कठिन काम है। जब तक दोनों भाषाओं पर अनुवादक का पूर्ण अधिकार न हो तब तक अनुवाद में प्राण-प्रतिष्ठा हो नहीं सकती। यह कार्य और कठिन हो जाता है यदि विषय काव्य हो। इसका प्रधान कारण होता है काव्य-रचना-प्रणाली की विभिन्नता। किन्हीं दो दूरस्थ राष्ट्रों की काव्य-पद्धति तथा रीति-परंपरा में विविध प्रकार के अंतर होते हैं। अनुवाद में इस व्यापक अंतर को बचाकर सौंदर्य और उत्कृष्टता की रक्षा करना प्रायः असंभव ही समझिए।

अँगरेजी साहित्य में मिल्टन अपनी वैयक्तिक उत्कृष्टता एवं काव्य-रचना-पद्धति की गहनता के लिये आदर्श माना जाता है। उसकी भाषा में लाक्षणिक वक्रता, अभिव्यंजना में आलंकारिक चमत्कार और विषय-प्रतिपादन में उपदेशात्मक एवं आदर्शोन्मुख प्रवृत्तियों का आधिक्य है। ऐसे कवि की एक प्रमुख रचना के अनुवाद करने का साहस अवश्य ही स्तुत्य है। अनुवाद में भाषा की एकस्वरता के अभाव में भी जो किसी को मार्दव, माधुर्य तथा व्यंजकतापूर्ण प्रसाद गुण दिखाई पड़ता है उसके विषय में तो यही कहा जा सकता है कि 'भिन्नरुचिर्हि लोकः'। हाँ, मूल रचनागत भावों की रक्षा बड़ी दक्षता के साथ की गई है, ऐसा कहना आधारहीन है; क्योंकि न तो यह अनुवादक का इष्ट मालूम पड़ता है और न इसमें सफलता ही मिली। यहाँ पर एक साधारण स्थल का उद्धरण मैं केवल इस अभिप्राय से दे रहा हूँ कि तुलना में सहायता होगी।

Break off, break off, I feel the different pace
Of some chaste footing near about this ground.
Run to your shrouds, within these brakes and trees;
Our number may affright:

छुप जाओ, भागो जल्दी से, कंटक झाड़ी में तरु ओट;
निरखि हमारे दल की गिनती, डरै न बाला, समझै खोट।

उक्त पंक्तियों के Break off और shrouds का कोई भाव अनुवाद में नहीं आ सका। इसी प्रकार अनेकानेक स्थलों पर छूट अथवा बढ़ती मिलेगी। ऐसी अवस्था में इसे भावानुवाद ही मानना होगा; और यह कोई दोष नहीं है। हाँ, अनुवादक ने मूल भावों की जो यथाशक्ति रक्षा की है उसके लिये उसे श्रेय मिलना चाहिए। स्वतंत्र रूप में पुस्तक पढ़ने पर आनंद आता है, इसमें संदेह नहीं है। अच्छा हुआ होता, आनंद और अधिक आता यदि भाषा सर्वत्र एकरूप होती। साथ ही भाषा में परिमार्जन की आवश्यकता दिखाई पड़ती है।

इस रचना में एक बात सुंदर तथा चमत्कार-युक्त और है। वह है पुस्तक एवं पात्रों का भारतीय नामकरण। कोमस् के लिये कामुक उपयुक्त नाम है। दोनों शब्दों में अर्थ-संबंधी साम्य तथा साधर्म्य है। इसी प्रकार उसकी माता सर्स (Crice) के लिये सुरसा शब्द का व्यवहार भी अच्छा हुआ है। 'स्थिरसिस्' का 'स्थिरशीश' भी साभिप्राय है। अन्य पात्रों के विषय में भी इसी प्रकार का सिद्धांत रखा गया है। पौराणिकता का अनुवाद कर लेने से प्रस्तुत पुस्तक में स्वतंत्र रचना का सा सौंदर्य उत्पन्न हो गया है। लेखक का प्रयास स्तुत्य है। आशा है, रसिकजन इस काव्य का यथोचित सम्मान करेंगे।

—जगन्नाथप्रसाद शर्मा, एम्० ए०।

आधी रात (ऐतिहासिक नाटक)—लेखक श्री जनार्दन राय; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; पृ० सं० २७०; मूल्य १॥)।

संक्षेप में इस नाटक की कथा यह है—

मेदपाट (मेवाड़) के वयोवृद्ध आत्मदर्शी राणा कुंभा की धर्म-भावना बुढ़ौती में इतनी बढ़ जाती है कि वे अपनी प्राणप्रिय प्रजा, सेनापति काँधल तथा युवराज उदयसिंह के विरोध करने पर भी अपना यह

निश्चय प्रकाशित कर देते हैं कि मैं मेवाड़ के अधीन सभी राज्यों को स्वतंत्र कर दूँगा—"जिसे जो भूखंड मेरे नाथ ने पनपने दिया उसे वहाँ पनपने दो ! क्यों बेचारों की मिट्टी पिलीद करते हो, गुलाम बनाकर, और ये बुरे कर्मों के ढेर लगाते हो।" नियमित घोषणा के लिये दरबार करने की डुग्गी फिरने के बाद सेनापति तो रूठकर स्वदेश चला जाता है, पर सम्राट् होने की आकांक्षा रखनेवाला, सिंहासन के लिये अधीर युवराज ऊदा, कुमार जैतसिंह को अपनी ओर मिलाकर घोषणा के पूर्व ही पिता का वध करके सिंहासन प्राप्त करता है। अपने पाप को छिपाने के लिये वह जैत का मुँह सम्मान और जागीरों से बंद करने का प्रयत्न करता है, पर जैतसिंह ऊदा को अपनी मुट्ठी में जान स्वयं मेवाड़ का स्वामी बनना चाहता है। जैतसिंह का अधिक सम्मान देख कुमार चेत्रसिंह को षड्यंत्र का संदेह होता है और वह बदला लेना चाहता है। ऊदा जैतसिंह से तंग आकर उसे भी मार डालता है और दूसरे दिन सारे मेवाड़ में वह कुंभा तथा जैतसिंह का खूनी प्रसिद्ध होता है। सेनापति काँधल की अधीनता में प्रजा तथा सामंतगण विद्रोह करते हैं। ऊदा की साध्वी रानी पीतम पति के पापों से ऊबकर पहले ही विष खा लेती है और उसका पुत्र सूरज भी थोड़े दिनों बाद मर जाता है। अंत में दो दो खून के पाप और पत्नी-पुत्र-शोक से दुःखी ऊदा पागल होकर तूफ़ानी रात में यह कहते हुए निकल पड़ता है कि मैं सुलतान की सेना लाकर सबको जीतूँगा। परंतु मार्ग में बिजली गिरने से उसकी मृत्यु हो जाती है।

इतिहास के अनुसार, मेवाड़ के राणा मोकल के पुत्र कुंभकर्ण या कुंभा (सं० १४९०-१५२५ वि०) बड़े वीर, विद्वान्, प्रजापालक, गुणग्राहक तथा यशस्वी थे। पिछले दिनों में उन्हें उन्माद हो गया था। उनके राज्य-लोलुप बड़े पुत्र उदयसिंह या ऊदा (सं०१५२५-३०) ने उनकी हत्या कर राज्य प्राप्त किया था। पितृघाती और अन्यायी होने के कारण उससे सारा मेवाड़ क्रुद्ध हो गया और उसके छोटे भाई रायमल ने सेनापति काँधल की सहायता से उसे राज्यच्युत कर

दिया। ऊदा अपने दोनों पुत्रों, सैंसमल और सूरजमल-सहित सुल्तान गयासुद्दीन के पास सहायता के लिये गया और उसे अपनी लड़की देने का वचन देकर सहायता का आश्वासन प्राप्त किया। पर वहाँ से लौटते हुए मार्ग में उस पर बिजली गिरी और वह मर गया।

नाटककार ने पराजित ऊदा को सुल्तान के पास तक न पहुँचने देकर, उसके पूर्व ही उस पर बिजली गिराई है। उसने ऊदा के केवल एक पुत्र बतलाया है, वह भी ऊदा के महल से बिदा होने के पूर्व ही मर जाता है। शेष मूलकथा का विस्तार, बिना परिवर्तन के, बड़ी भावुकता से किया गया है। नाटक का आरंभ भयंकर वन में, मध्यरात्रि में, अघोरियों के अड्डे से होता है, जहाँ वे साधु कुंभा के विनाश के लिये कुचक्र रचते हैं।

नाटक में युद्ध और षड्यंत्र की ही कथा आदि से अंत तक है। उसमें केवल पीतम का गौरवपूर्ण पति-प्रेम ही हृदय की कोमल भावना को जगाता है। गंगा की एकांत स्वामिभक्ति को भी अंत में निखरने का अवसर मिल जाता है। पर शेष किसी भी पात्र में वह गौरव और गंभीरता नहीं है जो नाटक को महत्त्व प्रदान कर सके। क्षुब्ध ऊदा की कवित्वमय रोषपूर्ण वाणी भी, जिसमें नाटककार की अधिक शक्ति लग गई है, उसके दुर्बल लक्ष्यों को देखते हुए नीचों की निरर्थक फटकार ही सी लगती है। कथा का विस्तार कुछ आवश्यकता से अधिक हुआ मालूम होता है, जिससे नाटक का बंध ढीला हो गया है। भाषा अवश्य ही ओज-पूर्ण है पर उसमें अनेक ऐसे प्रयोग आए हैं जिनको देखकर हिंदी के पाठक चौंके बिना न रहेंगे। जैसे क्रोध भरे भुजंग मेरी कीकियाँ कट गए, चिंता के साँप चँवरों से बीट झूमा करेंगे, अढ़कल, पगथिया, पधड़िया, मरभूखे, साता पूछना, पीछा पड़ना (=पीठ के बल लेटना), घा करना, आह रखना, मुट्ठी भींसना, व्यंग मारना, भाँजघड़ इत्यादि। 'राज स्थापे चलना' जैसे प्रयोग तो हिंदी को संपन्न बनाने के लिये प्रयत्नशील कितने

ही लोगों को पसंद आएँगे पर अपना से 'अपनत्व' भाववाचक और 'जादू' से 'जादूवई' विशेषण बनाने में शायद वे भी हिचकें। राणाजी को पूछना, चेत्रसिंह को सुनना, काँधल आते ही समझो (=आते ही होंगे ऐसा समझो) आदि प्रयोग भी अभी तक तो हिंदी में प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं। 'पहले का बच्चा' और 'जड़बख्तर' (=महामूर्ख ?) को देख कर तो दिमाग चक्कर खाने लगता है। भाषा पर इस प्रकार अत्याचार करना अनुचित है। प्रूफ की भूलें भी बहुत रह गई हैं जिससे कहीं कहीं तो विचित्र अर्थ उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—'धर्म की इस जीवनयात्रा में मैं कैसे आपको खोदूँ ?'

भाषा संबंधी इन दोषों को अलग रख दें तो साधारणतः नाटक अच्छा है।

—चित्रगुप्त।

दर्जी विज्ञान—लेखक श्रीयुत पं० टीकारामजी पाठक, प्रिंसिपल; प्रकाशक शिल्प-कला-विज्ञान-कार्यालय, अयोध्या; पृष्ठ-संख्या ९६; मूल्य १॥)।

इस पुस्तक में लेखक ने सरल हिंदी में दर्जी-विज्ञान की शिक्षा देने का प्रयत्न किया है। अभी तक हिंदी में शिल्प-कला पर लिखी गई पुस्तकों का प्रायः अभाव ही है। जो इनी गिनी पुस्तकें हैं उनकी लेखन-शैली और चित्र इतने विकट हैं कि अशिक्षित या अल्पशिक्षित स्त्री-पुरुषों के लिये उनको समझना असंभव सा हो जाता है। लेखक ने अपने विद्यार्थी-जीवन की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को सरल तथा सुबोध बनाने का काफी सफल प्रयत्न किया है।

इसमें तीन प्रकार की कमीज (टेनिस, अमेरिकन और पोलो), बँगला कुर्ता, बनियाइन और सदरी काटने के तरीके बताए गए हैं। इन वस्त्रों के चित्र खींचने तथा नाप लेने के ढंग सुगम हैं।

लेखक ने भाषा का यथेष्ट ध्यान नहीं रक्खा है। जैसे उन्होंने "चंद पंक्तियाँ गणित संबंधी लिखना भी निरर्थक न" समझा वैसे ही उन्हें शब्दों पर भी ध्यान देना उचित था। उदाहरणार्थ, आर्डिनरी नाप, स्क्वायर कफ़ और बैण्ड कालर के स्थान पर क्रम से साधारण या मामूली नाप, चौकोर कफ़ और गले की सादी पट्टी के प्रयोग किए जाते तो यह पुस्तक और सरल ही सिद्ध होती। अँगरेजी प्रभाव के कारण अन्य आधुनिक कलाओं के समान दर्जी कला में भी कितने ही अँगरेजी शब्द आ गए हैं। उनमें जो हमारी भाषा में टकसाली हो गए हैं उनका प्रयोग तो होना चाहिए। परंतु हिंदी के जो अपने शब्द हैं अथवा बाहरी शब्दों के जो हिंदी रूपांतर बन गए हैं उनका स्वभावत: पहले प्रयोग किया जाना चाहिए।

इस पुस्तक का नाम 'दर्जी-विज्ञान प्रथम-विकास' है, परंतु अपने क्रम से यह प्रथम-विकास नहीं सिद्ध होती। क्योंकि सिलाई सीखने का प्रथम अभ्यास करनेवालों के लिये प्रथम विकास में साधारण व्यवहार के वस्त्र होने चाहिए। कमीज की नाप अथवा काट और वस्त्रों से सरल होती है। प्रथम विकास में एक साधारण कमीज (टेनिस या पोलो) रक्खी जा सकती है। इसके बाद कुर्ता, कुर्ती, सलूका, जंपर, जाँघिया, बनियाइन इत्यादि प्रथम श्रेणी के घरेलू वस्त्रों की शिक्षा होनी चाहिए।

दूसरी ध्यान में लाने की बात यह है कि विशेषत: स्त्रियों के लिये केवल काट सीखने से काम न चलेगा। दूकान पर तो 'टेलर मास्टर' काटता है और कारीगर सीते हैं। कारीगर वस्त्र काटने की क्रिया में प्राय: अज्ञान होते हैं और टेलर मास्टर सीने की क्रिया में। परंतु स्त्रियों के लिये तो दोनों ही बातें आवश्यक हैं। पुस्तक में जिन वस्त्रों के काटने के तरीके बताए जायँ उनके सीने के ढंग भी बताए जाने चाहिए। तब पुस्तक की उपयोगिता पूर्ण सिद्ध होगी।

तथापि लेखक ने जो बताने के प्रयास किए हैं उनमें वे काफी सफल हैं। पुस्तक सरल, सुबोध और उपयोगी है। इस विषय की

हिंदी पुस्तकों में दर्जी-विज्ञान श्रेष्ठ कही जाय तो अत्युक्ति न होगी। इसके लिये लेखक को बधाई !

पुस्तक की तैयारी में चित्रों के कारण विशेष व्यय पड़ा होगा, तथापि इसका मूल्य कुछ अधिक जान पड़ता है और यह लेखक के असहाय-हितकारी उद्देश्य में कुछ बाधक हो सकता है।

—कृष्णकिशोरी।

कानून कर आमदनी भारतवर्ष १९२२—संपादक तथा अनुवादक सर्वश्री विश्वंभरदयाल और विश्वेश्वरदयाल, एडवोकेट प्रयाग; प्रकाशक रामनारायण लाल, कटरा, प्रयाग, पृ० सं० ४+८-२२३; मूल्य १) रु०।

इस पुस्तक में आयकर के कानून का संग्रह है, जो पूरे भारतवर्ष पर लागू है। इसमें कुछ भी टीका-टिप्पणी नहीं दी गई है और न भूमिका ही इस प्रकार की दी गई, जिससे जनसाधारण विशेष लाभ उठा सकें। कोरा एक्ट अनूदित कर दिया गया है। भाषा सरल रखी गई है। पुस्तक संग्रहणीय है।

कानून कब्जा आराजी संयुक्तप्रांत; १६३६—प्र० रामनारायणलाल, प्रयाग; पृ० सं० २१+२१+१९६+४०; मूल्य ॥=)।

उक्त प्रकाशक के यहाँ से अँगरेजी संस्करण श्रीमान् विश्वेश्वरदयाल एडवोकेट इलाहाबाद के संपादन में निकला है और उसमें जो अतिसंक्षिप्त व्याख्या की गई है, उसी का इस हिंदी संस्करण में अनुवाद दिया गया है। हिंदी संस्करण में दो संपादक हैं, जिनमें एक अर्थात् श्रीमान् विश्वंभरदयालजी एडवोकेट अनुवादक हो सकते हैं। अनुवाद में कहीं कहीं कुछ बढ़ाया भी गया है। टीकाकारों के प्रयास स्तुत्य हैं और भाषा को भी सरल करने का प्रयत्न किया गया

है। हिंदी में कानूनी पुस्तकों के लिखने तथा प्रकाशित होने का क्रम यदि इसी प्रकार चलता रहा तो कुछ दशाब्दियों बाद प्रामाणिक हिंदी में ऐसे ग्रंथ उपलब्ध हो जाएँगे।

—व्रजरत्नदास।

नेताओं की कहानियाँ—लेखक श्रीयुत व्यथितहृदय; प्रकाशक देवकुमार मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना; पृष्ठ १४०; मूल्य ॥)।

कहानी की शैली में छोटे बालकों के लिये लिखी गई हमारे प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं की ये जीवनियाँ अपने ढंग की नई चीज हैं। 'एक लड़का था' इस प्रकार एक नेता की जीवनी प्रारंभ होती है और सहज ही बच्चों की रुचि को आकृष्ट कर लेती है—ठीक वैसे ही जैसे 'एक राजा था'। परिच्छेद के अंत में बच्चे को मालूम होता है कि वह लड़का था बाल गंगाधर तिलक, या गांधी या जवाहरलाल। जीवन के विभिन्न पहलुओं को अलग अलग इसी तरह शुरू करके उनकी शृंखला गूँथ दी गई है। इस प्रकार प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियों की रूप-रेखाएँ बच्चों के लिये खींची गई हैं, जिनमें उनके चरित्र के खास खास गुण आ गए हैं। भाषा सरल है और शैली बच्चों के लिये रोचक है। इस पुस्तिका में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, पं० मोतीलाल नेहरू, देशबंधु दास, महात्मा गांधी, बाबू राजेंद्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, खान अब्दुलगफ्फार खाँ तथा श्री सुभाष बोस की जीवनियाँ है। मुखपृष्ठ पर उक्त नेताओं के छोटे छोटे चित्र भी हैं।

जीवित मूर्तियाँ—लेखक श्रीयुत व्यथितहृदय; प्रकाशक ग्रंथमाला कार्यालय, पटना; पृष्ठ ८८; मूल्य ।≈)।

यह पुस्तिका लेखक की 'नेताओं की कहानियाँ' नामक पुस्तक से भिन्न शैली में लिखी गई है और उस श्रेणी से ऊपर के विद्यार्थियों के

प्रशंसा कर हम अपने को कवि कहलाना सार्थक समझें। अब तो ओदी में बैठकर राईफलों द्वारा शेर या सूअर का शिकार करनेवाले वीरों की गणना में समझे जाते हैं और चारण कवियों से अपनी वीरता के झूठे काव्य सुन पाइयों में उनको प्रसन्न भी करते हैं। एक रुपया देकर चारण कवियों द्वारा कर्ण कहलाना आजकल बहुत सुलभ है। चोरों, लुटेरों, व्याभिचारियों आदि की प्रशंसा हमने अर्थलोलुप चारण कवियों से सुनी है।"*

पिछले बीस पच्चीस वर्षों में चारण जाति में धीरे धीरे आधुनिक शिक्षा का प्रचार हुआ है और उसमें स्वाभिमान की फिर जागर्ति हुई है। चारण जाति के नेताओं ने अ० भा० चारण सम्मेलन की स्थापना कर उसका फिर से संगठन करने का प्रयत्न किया है और चारण कवियों को सच्ची कविता की ओर झुकाया है। अब व्यक्तिगत कविता का जमाना न रहा। चारण जाति में जो अब इने गिने कवि हैं, वे देश-कालानुसार लोकजीवन-संबंधी विषयों पर कविता करते हैं। खेद है कि अनुकूल परिस्थिति (राज्याश्रय आदि) के अभाव से अब धीरे धीरे चारण जाति में वह परंपरागत काव्य-प्रतिभा प्राय: नष्ट होती जा रही है।

हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों द्वारा उपेक्षा—

प्राय: हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों ने चारण कवियों को अपने ग्रंथों में स्थान नहीं दिया है। हमारे विचार से इस उपेक्षा का कारण चारण काव्य के यथेष्ट परिचय का न होना ही नहीं है। शायद हिंदी-साहित्य के इतिहास के लिखने की शैली ही सदोष है। हिंदी के ग्रंथों के विषयानुसार वर्गीकरण और काल-विभाजन में इतिहासकारों ने हिंदी-साहित्य-संबंधी कितनी ही महत्त्व-पूर्ण बातें भुला दी हैं।

* दे०—'चारण', खंड १, अंक ७-८, पृष्ठ १७७।

४

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों की हिंदी की विभाषाओं और उसके साहित्यों के प्रति कोई निर्धारित नीति नहीं है। वे इतना तो लिखते हैं कि भाषाविज्ञान की दृष्टि से डिंगल (राजस्थानी), अवधी व्रजभाषा आदि हिंदी की विभाषाएँ हैं। परंतु उनके साहित्य की ओर वे समान रूप से ध्यान नहीं देते। यदि हिंदी की विभाषाओं के साहित्य में समान प्रवृत्तियाँ हैं, तो इससे भारत का सांस्कृतिक ऐक्य ही सिद्ध होता है। इस बात पर यदि ध्यान दिया जाता तो डिंगल साहित्य को हिंदी के इतिहास में भुलाया न जाता।

डिंगल भाषा के ऐसे कई प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिनका काव्य के एक से अधिक क्षेत्र पर अधिकार था, जैसे महात्मा ईश्वरदास, महाकवि नरहरदास आदि। यह सत्य है कि परिस्थितियाँ साहित्य का निर्माण करती हैं, परंतु साहित्य में भी ऐसी शक्ति होती है कि वह देश या राष्ट्र का निर्माण करता है। हम मानते हैं कि डिंगल के ग्रंथ प्राय: अप्रकाशित हैं, अत: हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों को वे उपलब्ध न हुए होंगे और उनका शोध अभी होना है। परंतु प्रकाशित ग्रंथों पर तो उन्हें अवश्य यथेष्ट विचार करना उचित था। हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों से हम प्रार्थना करते हैं कि वे हिंदी की विभाषाओं के साहित्यों का गवेषणापूर्ण अध्ययन करें और जिन निष्कर्षों पर पहुँचें उन्हें इतिहास में यथोचित स्थान दें।

———

चयन

छत्रसाल-दशक का अनस्तित्व

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, साहित्यरत्न का उपर्युक्त विषय पर एक महत्त्वपूर्ण लेख 'सुधा', वर्ष १४, खंड १, संख्या २ में प्रकाशित हुआ है। वह यहाँ उद्धृत है :—

'भूषण' कवि के नाम पर इस समय तीन पुस्तकें प्रचलित हैं— (१) 'शिवराज-भूषण', (२) 'शिवा-बावनी' और (३) 'छत्रसाल-दशक'। इनमें से 'शिवराज-भूषण' को छोड़कर शेष दोनों पुस्तकें 'भूषण' द्वारा संगृहीत नहीं हैं। यही नहीं, इन दोनों पुस्तकों का अस्तित्व तक प्राचीन काल में न था। ये संग्रह बहुत आधुनिक हैं, और अत्यंत भ्रमपूर्ण। 'शिवा-बावनी' के संबंध में मैं अपने विचार अपनी उक्त पुस्तक की भूमिका में बहुत पहले व्यक्त कर चुका हूँ। आज 'छत्रसाल-दशक' के संबंध में हिंदी-जगत् के समक्ष कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। इस संग्रह का प्रचार कब से है, यह किस प्रकार बना, इन्हीं बातों का विचार इस लेख में किया जायगा। इसके सामने आ जाने पर हिंदी-संसार को पता चल जायगा कि इन संग्रहों पर विश्वास करके 'भूषण' के काल-निर्णय की जो बड़ी बड़ी इमारतें खड़ी की गई हैं, उनकी नींव कितनी कच्ची और उथली है।

'छत्रसाल-दशक' का संग्रह सबसे पहले सन् १८९० में भाटिया बुकसेलर्स गोवर्धनदास-लक्ष्मीदास (बंबई) ने किया। 'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल-दशक' दोनों ही उनके यहाँ से सन् १८९० में सबसे पहले प्रकाशित हुए हैं, और इन दोनों संग्रहों के लिये उत्तरदायी उक्त प्रकाशक ही हैं। 'शिवा-बावनी' का संग्रह तो कुछ भाटों की सुनी-सुनाई कविता और कुछ प्राचीन संग्रहों में मिलनेवाली 'भूषण' की कविता का संकलन करके किया गया है। 'बावनी' नाम रखने के

लिये उन्होंने 'भूषण' और शिवाजी के संबंध में प्रचलित किंवदंती को आधार बनाया है। पर 'छत्रसाल-दशक' के लिये उनके पास कोई आधार ही न था। उन्हें दो संग्रहों में कुछ छंद छत्रसाल की प्रशंसा के मिले, जिन्हें उन्होंने 'भूषण' की रचना समझकर, 'दशक' नाम जोड़कर प्रकाशित कर दिया। इनमें से कुछ छंद 'भूषण' के अवश्य हैं, पर सभी उनके नहीं। यही नहीं, कुछ छंद बूँदी के 'छत्रसाल' की प्रशंसा के भी इस संग्रह में संगृहीत हैं। उक्त प्रकाशकों को इतिहास की बातें ज्ञात न थीं, अतः उन्होंने भूल से ऐसा किया। हिंदी-संसार ने इसकी कोई छान-बीन नहीं की, और वह संग्रह ज्यों का त्यों बहुत दिनों तक चलता रहा। अब लोगों ने उसमें परिवर्तन करना आरंभ किया है, पर 'छत्रसाल-दशक' नाम अब तक नहीं हटाया गया। किंवदंती के आधार पर 'शिवा-बावनी' नाम रखकर 'भूषण' के ५२ छंदों का संग्रह चाहे होता भी रहे, पर 'छत्रसाल-दशक' नाम तो शीघ्र ही हट जाना चाहिए। 'बावनी' और 'दशक' का प्राचीन काल में कोई अस्तित्व न था, इसका सबसे पक्का प्रमाण यह है कि इन दोनों पुस्तकों की न तो कोई हस्तलिखित प्रति आज तक मिली, और न सन् १८६० के पूर्व इनका किसी पुस्तक में नामोल्लेख ही हुआ।

जब दक्षिण में शिवाजी-संबंधी अन्वेषण पर ऐतिहासिकों का विशेष ध्यान गया, तब उन्होंने शिवाजी के दरबारी कवि 'भूषण' की कविता की खोज भी आरंभ की। प्रकाशकों ने 'भूषण' की रचना की माँग देखकर चटपट उक्त दो संग्रह प्रकाशित कर दिए। 'छत्रसाल-दशक' के छंद दो पुस्तकों से लिए गए—'शृंगार-संग्रह' और 'शिवसिंह-सरोज' से। काशी के प्रसिद्ध कवि और टीकाकार सरदार कवि ने, सं० १६०५ में, 'शृंगार-संग्रह' समाप्त किया। वह नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि इसका नाम 'शृंगार-संग्रह' है, और इसमें नायिका-भेद की कविता संगृहीत है, तथापि अंत में थोड़ी सी कविता 'मानवी कवित्त'-शीर्षक के अंतर्गत वीर-रस की भी दी गई है। इसमें विभिन्न कवियों द्वारा विभिन्न राजाओं की प्रशस्ति के छंद रखे गए हैं।

'भूषण' की भी पर्याप्त रचना इसमें दी गई है। छत्रसाल की प्रशंसा में कई कवियों के छंद भी इसमें दिए गए हैं। इस संग्रह में छत्रसाल की प्रशंसा के कुछ छंद ऐसे भी हैं, जिनमें कवि का नाम नहीं दिया गया है। प्रकाशकों ने इस संग्रह से उन सब छंदों को चुन लिया जिनमें 'भूषण' का नाम आया है, और छत्रसाल की कीर्ति वर्णित है, तथा जिनमें किसी कवि का नाम तो नहीं आया, पर छत्रसाल की प्रशंसा की गई है, और उनका नाम भी छंद में आ गया है। इन दूसरे प्रकार के छंदों का संग्रह करने में उन्होंने महेवा और बूँदी वाले छत्रसालों का भेद न जानने के कारण कोई विचार नहीं रखा। परिणाम यह हुआ कि 'छत्रसाल-दशक' में केवल दूसरे कवियों के छंद ही 'भूषण' के नाम पर नहीं रख दिए गए, बल्कि दूसरे छत्रसाल की प्रशस्ति के छंद भी उन्हीं के नाम पर रखे गए। 'श्रृंगार-संग्रह' में ऐसे केवल सात ही छंद हैं। शेष तीन छंद (कवित्त) 'शिवसिंह-सरोज' में, 'भूषण' की रचना में, दिए हुए रखे गए हैं। इस प्रकार कुल दस ही कवित्त प्रकाशकों को मिले, जिन्हें उन्होंने 'भूषण' का समझा। स्वर्गीय गोविंद गिल्लाभाई के पूछने पर उक्त प्रकाशकों ने बतलाया था कि 'छत्रसाल-दशक' का संग्रह हमने इन्हीं दोनों पुस्तकों—'श्रृंगार-संग्रह' और 'शिवसिंह-सरोज'—से किया है। इस बात का उल्लेख भाईजी ने अपने गुजराती 'शिवराज-शतक' की भूमिका में किया है। 'शिवसिंह-सरोज' में 'भूषण'-कृत छत्रसाल की प्रशंसा के कवित्तों के अतिरिक्त दो दोहे भी थे, उन्हें भी 'छत्रसाल-दशक' के आरंभ में रख दिया गया है। इस प्रकार उक्त 'दशक' में दो दोहे और दस कवित्त हैं। कुल बारहों छंदों के अनुसार 'छत्रसाल-द्वादशी' या 'छत्रसाल-बारही' नाम न रखकर उन्होंने कवित्तों को प्रमुख मानकर 'छत्रसाल-दशक' नाम ही रखा है। इसी 'छत्रसाल-दशक' को हिंदी-संसार 'भूषण'-कृत संग्रह माने बैठा है!

'छत्रसाल-दशक' के आरंभ में जो दो दोहे रखे गए हैं, वे ये हैं—

इक हाड़ा बूँदी धनी, मरद गहे करवाल;
सालत औरँगजेब के, वे दोनों छतसाल।

ये देखौ छत्तापता, वे देखौ छतसाल;
ये दिल्ली की ढाल, ये दिल्ली ढाहनवाल।
(शिवसिंह-सरोज)

'मरद गहे करवाल' के स्थान पर 'मरद महेवावाल' पाठ भी मिलता है, जो अधिक शुद्ध है।

'छत्रसाल-दशक' का पहला छंद 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २६२ पर इस प्रकार दिया हुआ है—

चले चंदबान, घनबान औ' कुहूकबान,
चलत कमान, धूम आसमान छ्वै रहो;
चलीं जमडाढ़ैं, बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ को तरनि भान (?) व्वै रहो।
ऐसे समै फौजैं बिचलाई **छत्रसालसिंह**,
अरि के चलाए पाय बीर-रस च्वै रहो,
हय चले, हाथी चले, संग छाँड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रहो।

इस छंद में बूँदी के हाड़ा छत्रसाल की युद्ध-वीरता का वर्णन है। इसमें किसी कवि का नाम नहीं। प्रकाशकों ने भ्रम से इसे 'भूषण' का और महेवावाले छत्रसाल की प्रशंसा में समझकर संग्रह कर दिया है। यदि प्रकाशकों ने ध्यान से 'शिवसिंह-सरोज' की छान-बीन की होती तो उन्हें यही छंद 'सरोज' में दूसरे कवि के नाम पर मिल गया होता। 'सरोज' के पृष्ठ २४७ पर यही छंद 'मुकुंदसिंह' कवि के नाम पर इस प्रकार दिया हुआ है—

छूटैं चंद्रबान, भले बान औ' कुहूकबान,
छूटत कमान जिमी आसमान छ्वै रह्यो;
छूटैं ऊँटनालैं, जमनालैं, हाथनालैं छूटैं,
तेगन को तेज सो तरनि जिमि व्वै रह्यो।
ऐसे हाथ हाथन चलाइ कै **'मुकुंदसिंह'**,
अरि के चलाइ पाइ बीर-रस च्वै रह्यो;

हय चले, हाथी चले, संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचल में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।

मुकुंदसिंह का परिचय 'सरोज' में इस प्रकार दिया गया है—

"मुकुंदसिंह हाड़ा, महाराजा कोटा, सं० १६३५ में उ०।

"यह महाराजा शाहजहाँ बादशाह के बड़े सहायक और कविता में महानिपुण व कवि-कोविदों के चाहक थे।"

'दशक' का दूसरा छंद लीजिए। यह 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २६५ पर इस प्रकार मिलता है—

दारा साहि औरँग जुरे हैं दोऊ दिल्लीदल,
एकै गए भाजि, एकै गए रुँधि चाल में;
बाजी कर कोऊ दगाबाजी करि राखो जिद्दि,
कैसहूँ प्रकार प्रान बचत न काल में।
हाथी तें उतरि हाड़ा जूझो लोह-लंगर दै,
एती लाज कामें, जेती लाज छत्रसाल में;
तन तरवारिन में, मन परमेस्वर में,
प्रन स्वामि-कारज में, माथो हर-माल में।

तीसरे चरण का उत्तरार्ध यों भी मिलता है—'एती लाज कामें, जेती '**लाल**' छत्रसाल में'। 'शृंगार-संग्रह' के ऊपर उद्धृत छंद में किसी कवि का नाम नहीं है, पर छत्रसाल नाम है। प्रकाशकों ने इसे भी 'भूषण' का मान लिया है। पर यही छंद 'सरोज' के पृष्ठ ३०२ पर 'लाल' कवि के नाम पर इस प्रकार दिया हुआ है—

दारा और औरँगलरे हैं दोऊ दिल्ली बीच,
एकै भाजि गए, एकै मारे गए चाल में;
बाजी दगाबाजी करि जीवन न राखत हैं,
जीवन बचाए ऐसे महाप्रलैकाल में।
हाथी तें उतरि **हाड़ा** लर्‌यो हथियार लै कै,
कहै **लाल** बीरता बिराजै **छत्रसाल** में;

तन तरवारिन में, मन परमेस्वर में,
पन स्वामि-कारज में, माथो हर-माल में।

इन 'लाल' कवि का परिचय 'सरोज' में इस प्रकार दिया गया है—

"१ लाल कवि प्राचीन (१), सं० १७३८ में उ०।

"यह कवि राजा छत्रसाल हाड़ा कोटा-बूँदीवाले के यहाँ थे। जिस समय दाराशिकोह और औरंगजेब फतूहा में लड़े हैं, और छत्रसाल मारे गए, उस समय यह कवि उस युद्ध में मौजूद थे। इनका बनाया हुआ 'विष्णु-विलास' नामक ग्रंथ नायिका-भेद का अति विचित्र है।" (पृष्ठ ४८६)

इस प्रकार प्रमाणित हो जाता है कि उक्त छंद 'भूषण' का नहीं, 'लाल' कवि का है।

'दशक' का तीसरा छंद 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २६६ पर इस प्रकार मिलता है—

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै-भानु की सी,
फारैं तम-तोम से गयंदन के जाल को;
लाल औनिपाल **छत्रसाल** रनरंगी बीर,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करबाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कालिका सी किलकि कलेवा देति काल को;
लागति लपकि कंठ बैरिन के बाडव सी,
रुद्र को रिझावै दै दै मुंडन की माल को।

यद्यपि इस छंद में कवि का नाम 'लाल' पड़ा हुआ है, पर प्रकाशकों ने उसे नहीं समझा, और 'भूषण' का छंद मानकर इसे 'दशक' में रख दिया। मिश्रबंधुओं ने भी 'लाल' पर यह टिप्पणी दी है—"छंद-नंबर ३ में उन्होंने 'छत्रसाल' को 'लाल छितिपाल' क्या ही ठीक कहा है! क्योंकि उन महाराज की अवस्था उस समय २४-२५ साल की थी।"

यह 'लाल कवि' बूँदीवाले लाल कवि से भिन्न हैं। इन्होंने महेवावाले छत्रसाल का जीवन-वृत्त अपने 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथ में विस्तार के साथ दिया है।

'दशक' का चौथा छंद 'शिवसिंह-सरोज' में 'भूषण' के नाम पर दिया गया है। वह इस प्रकार है—

भुज-भुजगेस की वैसंगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के;
बखतर, पाखरन बीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैयाराय चंपति के छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखानि यों बलन के;
पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।

'भूषण' के नाम पर जितने छंद मिलते हैं, उनमें महेवावाले छत्रसाल का कुछ न कुछ अभिज्ञान स्पष्ट मिलता है। कहीं 'चंपति' के, कहीं 'महेवा-महिपाल', कहीं 'बुंदेला' कहकर उन्होंने उन्हें व्यक्त किया है।

'दशक' का पाँचवाँ कवित्त 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २६८ पर इस प्रकार मिलता है—

रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसालसिंह,
'**भूषन**' भनत गजराज जोम जमकैं,
भादों की घटा सी उठीं गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं फेरैं दामिनी सी दमकैं।
खान उमराउन के आन राजा-राउन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं;
बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
नागतीं तगारन नगारन की धमकैं।

संयोग से 'छत्रसाल' की प्रशंसा का 'भूषण'-कृत जो छंद 'शृंगार-संग्रह' में है, वह सरोज में, 'भूषण' के प्रकरण में नहीं है, और जो 'सरोज' में है, वह 'संग्रह' में नहीं।

छठा कवित्त 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २६१ पर इस प्रकार दिया गया है—

अत्र गहि **छत्रसाल** खिजो खेत बेतवै के,
उत तें पठानन हूँ कीनि झुकि झपटैं;
हिम्मत बड़ी के गबड़ी के खिलवारन लौं,
देत सै हजारन हजार बार लपटैं।
'**भूषन**' भनत काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमात जोर जपटैं;
समद लौं समद की सेना पै बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं।

यह छंद केवल 'शृंगार-संग्रह' में है, 'सरोज' में नहीं। सातवाँ छंद 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २६२ पर इस प्रकार दिया गया है—

हैबर हरट्ट साज गैबर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की;
'**भूषन**' भनत **राव चंपति को छत्रसाल**,
रुप्यौ रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिंदुवाने की।
कैयक करोर एक बार बैरी वार मारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की;
सेर अफगन सेन सगर-सुतन लगि,
कपिल-सराप लौं तराप तोपखाने की।

यह कवित्त भी केवल 'संग्रह' में है, 'सरोज' में नहीं। आठवाँ छंद 'शिवसिंह-सरोज' के पृष्ठ २४० पर इस प्रकार दिया गया है—

चाकचक चमू के अचाकचक चहूँ ओर,
चाक सी फिरति धाक **चंपति के लाल की**;

'भूषन' भनत बादसाही मारि जेर करी,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की।
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन-उथप्पन की रीति **छत्रसाल** की;
जंग जीति लेवा ते वै ह्वै कै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन **महेवा-महिपाल** की।

यह कवित्त 'संग्रह' में नहीं है। 'दशक' का नवाँ कवित्त 'शृंगार-संग्रह' के पृष्ठ २७२ पर इस प्रकार मिलता है—

कीबे के समान प्रभु ढूँढ़ देख्यो आन पै,
निदान दान युद्ध में न कोऊ ठहरात हैं;
पंचम प्रचंड भुजदंड को बखान सुनि,
भाजिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं।
संका मानि सूखत अमीर दिल्लीवारे जब,
चंपति के नंद के नगारे घहरात हैं;
चहूँ ओर तकित चकत्ता के दलन पर,
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात हैं।

इस कवित्त में 'भूषण' का नाम नहीं आया है। है यह उन्हीं छत्रसाल की प्रशस्ति में, जिनकी प्रशंसा 'भूषण' ने की है। पर यही छंद 'शिवसिंह-सरोज' के पृष्ठ १९० पर 'पंचम कवि प्राचीन' के नाम पर इस प्रकार मिलता है—

कीबे को समान ढूँढ़ि देखे प्रभु आन ये,
निदान दान जूझ में न कोऊ ठहरात हैं;
'पंचम' प्रचंड भुजदंड के बखान सुनि,
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं।
संका मानि काँपत अमीर दिल्लीवाले जब,
चंपति के नंद के नगारे घहरात हैं;
चहूँ ओर कत्ता के चकत्ता दल ऊपर सु,
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात हैं।

'पंचम' कवि का परिचय 'सरोज' में यों दिया गया है—

"पंचम कवि प्राचीन (१) बंदीजन बुंदेलखंडी, सन् १७३५ में उ०। महाराज छत्रसाल बुंदेला के यहाँ थे।"

इस छंद में 'भूषण' का नाम नहीं है, फिर भी यह भूषण का माना गया है, और 'पंचम' शब्द की विधि यों मिलाई गई है—"पंचम-सिंह बुंदेलों के पूर्व-पुरुषा थे। महाराज बुंदेल (जो बुंदेलों के पुरुषा थे) इनके पुत्र थे। पंचमसिंह बड़े प्रतापी और देवी के भक्त थे।"—मिश्रबंधु।

'छत्रसाल-दशक' का दसवाँ कवित्त साहूजी और छत्रसाल, दोनों की प्रशंसा करता है, और 'भूषण' का ही बनाया हुआ है। 'छत्रसाल-दशक' में उचित यह होता कि केवल छत्रसाल की ही स्वतंत्र प्रशंसा के छंद रखे जाते, पर प्रकाशकों ने इसका विचार न करके 'दशक' की पूर्ति करने के लिये उसे भी रख दिया। यह कवित्त 'शिवसिंह-सरोज' में यों मिलता है—

राजत अखंड तेज, छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिए साल को;
जाके परताप सों मलिन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साजि साजि गजतुरी कोतल कतारि दीन्हें,
'भूषन' भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को;
और राव-राजा एक मन में न लाऊँ अब,
साहू को सराहौं की सराहौं **छत्रसाल** को।

इस प्रकार 'दशक' में आए केवल ६ कवित्त 'भूषण' के हैं, जिनमें से एक कवित्त छत्रसाल की स्वतंत्र प्रशंसा करनेवाला नहीं है। शेष चार कवित्त अन्य कवियों के हैं। उनमें भूषण का नाम कहीं नहीं, पर जो कवित्त 'भूषण' के हैं उनमें उनका नाम आया है। जिनमें उनका नाम नहीं, वे दूसरे कवियों के नाम पर मिलते हैं। आरंभ के दो दोहे भी संदिग्ध हैं। इस प्रकार की अप्रामाणिक पुस्तक हिंदी-संसार

में 'भूषण' के नाम पर चलती रहे, यह कितने दुःख की बात है! असल में 'भूषण' के नाम पर किया हुआ यह वैसा ही संग्रह है, जैसे संग्रह तुलसी, सूर आदि के नाम पर आज दिन निकल रहे हैं। तुलसी, सूर आदि के संग्रह तो कुछ ठिकाने के हैं, पर 'भूषण' का यह संग्रह भ्रांतियों से भरा है। हिंदी से अनभिज्ञ प्रकाशक जो भ्रांति कर बैठे, उसे हिंदी-संसार धोखे में पड़कर बहुत दिनों तक मानता चला जाय, यह बहुत भद्दी बात है। अतः अब 'भूषण'-ग्रंथावलियों और 'साहित्य के इतिहासों' से 'छत्रसाल-दशक' का नाम हटना चाहिए, क्योंकि सन् १८९० के पूर्व इसका कोई अस्तित्व नहीं था।

——

पृथिवी-पुत्र

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का उपर्युक्त शीर्षक से एक उपादेय लेख 'जीवन-साहित्य' वर्ष १ अं० १, में प्रकाशित हुआ है। वह यहाँ उद्धृत है —

हिंदी के साहित्यसेवियों को पृथिवी-पुत्र बनना चाहिए। वे सच्चे हृदय से यह कह और अनुभव कर सकें—**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** (अथर्ववेद) "यह भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ।" लेखकों में यह ज्ञान न होगा तो उनके साहित्य की जड़ें मजबूत नहीं होंगी, आकाशबेल की तरह वे हवा में तैरती रहेंगी। विलायती विचारों को मस्तिष्क में भरकर उन्हें अधपके ही बाहर उँडेल देने से किसी साहित्य का लेखक लोक में चिर-जीवन नहीं पा सकता। हिंदी-साहित्यकारों को अपनी खुराक भारत की सांस्कृतिक और प्राकृतिक भूमि से प्राप्त करनी चाहिए। लेखक जिस प्रकार के जीवनरस को चूसकर बढ़ता है, उसी प्रकार की हरियाली उसके साहित्य में भी देखने को मिलेगी। आज लोक और लेखक के बीच में गहरी खाई बन गई है, उसको किस तरह पाटना चाहिए, इस पर सब साहित्यकारों को पृथक् पृथक् और संघ में बैठकर विचार करना आवश्यक है।

प्राकृतिक भूमि

हिंदी-लेखक को सबसे पहले भारत-भूमि के भौतिक रूप की शरण में जाना चाहिए। राष्ट्र का भौतिक रूप आँख के सामने है। लाखों वर्षों से इसकी सत्ता एक सी चली आई है। राष्ट्र की भूमि के साथ साक्षात् परिचय बढ़ाना आवश्यक है। एक एक प्रदेश को लेकर वहाँ की पृथिवी के भौतिक रूप का सांगोपांग अध्ययन हिंदी-लेखकों में बढ़ना चाहिए। यह देश बहुत विशाल है। यहाँ देखने और प्रशंसा करने के लिये अतुल सामग्री है। उसका ज्ञान करते हुए हमें एक शताब्दी लग जायगी। पुराणों के महामना लेखकों ने भारत के एक एक सरोवर, कुंड, नदी और झरने से साक्षात् परिचय प्राप्त किया, उसका नामकरण किया और उसको देवत्व प्रदान कर उसकी प्रशंसा में माहात्म्य बनाया। हिमवंत और विंध्य जैसे पर्वतों के रम्य प्रदेश हमारे अर्वाचीन लेखकों के सुसंस्कृत माहात्म्य-गान की प्रतीक्षा कर रहे हैं। देश के पर्वत, उनकी ऊँची चोटियाँ, पठार और घाटियाँ सब हिंदी के लेखकों की लेखनी का वरदान पाने की बाट देख रही हैं। देश की नदियाँ, वृक्ष और वनस्पति, ओषधि और पुष्प, फल और मूल, तृण और लताएँ सब पृथिवी के पुत्र हैं। लेखक उनका सहोदर है। लेखक को इस विशाल जगत् में प्रवेश करके अपने परिचय का क्षेत्र बढ़ाना चाहिए। चरक और सुश्रुत ने ओषधियों के नामकरण का जो मनोरम अध्याय शुरू किया था, उसका सच्चा उत्तराधिकार प्राप्त करने के लिये हिंदी के लेखक को बहुत परिश्रम करने की जरूरत है। और सब से अधिक आवश्यक है एक नया दृष्टिकोण, जिसके बिना साहित्य में नवीन प्रेरणा की गंगा का अवतरण नहीं हुआ करता। हिंदी के लेखकों को वनों में जाकर देश के वनचरों के साथ संबंध बढ़ाना है। वन्य पशु-पक्षी सभी उसके सगोती हैं, वे भी तो पृथिवी-पुत्र हैं। अथर्ववेद के पृथिवी-सूक्त के ऋषि की दृष्टि, जो कुछ पृथिवी से जन्मा है सबको पूजा के भाव से देखती है :

हे पृथिवी, जो तेरे वृक्ष, वनस्पति, शेर, बाघ आदि हिंस्र जंतु, यहाँ तक कि साँप और बिच्छू भी हैं, वे भी हमारे लिये कल्याण करनेवाले हों।

पश्चिमी जगत् में पृथिवी के साथ यह सौहार्द का भाव कितना आगे बढ़ा हुआ है! भूमध्यसागर या प्रशांत महासागर की तलहटी में पड़े हुए सीप और घोंघों तक की सुध-बुध वहाँ के निवासी पूछते हैं। भारतीय तितलियों पर पुस्तक चाहें, तो अँगरेजी में मिल जायगी। हमारे जंगलों में कुलाचें मारनेवाले हिरनों और चीतलों के सींगों की क्या सुंदरता है, हमारे देश के असल मुर्गों की बढ़िया नस्ल ने संसार में कहाँ कहाँ जाकर कुश्ती मारी है, इसका वर्णन भी अँगरेजी में ही मिलेगा। ये सब विषय एक जीवित जाति के लेखकों को अपनी ओर खींचते हैं। क्या हिंदी-साहित्य के कलाकार इनसे उदासीन रहकर भी कुशल मना सकते हैं? आज नहीं तो कल हमें अवश्य ही इस सामग्री को अपने उदार अंक में अपनाना पड़ेगा। यह कार्य जीवन की उमंग के साथ होना चाहिए। यही साहित्य और जीवन का संबंध है।

देश के गाय और बैल, भेड़ और बकरी, घोड़े और हाथी की नस्लों का ज्ञान कितने लेखकों को होगा। पालकाप्य मुनि का हस्ता-युर्वेद अथवा शालिहोत्र का अश्व-शास्त्र आज भी मौजूद हैं, पर उनका उत्तराधिकार चाहनेवाले मनुष्य नहीं। मल्लिनाथ ने माघ की टीका में हमें 'लीलावती' नामक ग्रंथ के उद्धरण दिए हैं जिनसे मालूम होता है कि घोड़ों की चाल और कुदान के बारे में भी कितना बारीक विचार यहाँ किया गया था। पश्चिमी एशिया के अलअमनी गाँव में ईसा से १४०० वर्ष पूर्व की एक पुस्तक मिली है, जिसमें अश्वविद्या का पूरा वर्णन है। उसमें संस्कृत के अनेक शब्द जैसे एकावर्तन, द्व्यावर्तन, त्र्यावर्तन आदि घोड़ों की चाल के बारे में पाए गए हैं। उस साहित्य के दाय में हिस्सा माँगनेवाले भारतवासियों की आज कमी दिखलाई पड़ती है।

हमने अपने चारों ओर बसनेवाले मनुष्यों का भी तो अध्ययन नहीं शुरू किया। देशी नृत्य, लोकगीत, लोक का संगीत, सबका उद्धार साहित्य-सेवा का अंग है। एक देवेंद्र सत्यार्थी क्या, सैकड़ों सत्यार्थी गाँव गाँव घूमें, तब कहीं इस सामग्री को समेट पावेंगे। इस देश में मानो अपरिमित साहित्य-सामग्री की प्रतिक्षण वृष्टि हो रही है, उसको एकत्र करनेवाले पात्रों की कमी है। लोक की रहन-सहन, वेष और आभूषण, भोजन और वस्त्र सबका अध्ययन करना है। जनपदों की भाषाएँ तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुएँ हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्तशास्त्र भरापूरा बनेगा। हिंदी शब्द-निरुक्ति, बिना जनपदों की बोलियों का सहारा लिए बन ही नहीं सकती। जनपदों की बोलियाँ कहावतों और मुहावरों की खान हैं। हम चुस्त राष्ट्रभाषा बनाने के लिये तरस रहे हैं, पर उसकी जो खानें हैं उनको खोदकर सामग्री प्राप्त करने की ओर हमने अभी तक ध्यान नहीं दिया। हिंदी-भाषा की तीन हजार धातुओं को यदि ठीक तरह ढूँढ़ा जाय, तो उनकी सेवा से हमें भाषा के लिये क्या शब्द नहीं मिल सकते? पर हमारा धातुपाठ कहाँ है, वह हिंदी के पाणिनि की बाट देख रहा है। खेल और क्रीड़ाएँ क्या राष्ट्रीय जीवन के अंग नहीं हैं? मेले, पर्व और उत्सव सभी हमारी पैनी दृष्टि के अंतर्गत आ जाने चाहिएँ। इस आँख को लेकर जब हम अपने लोक के आकाश में ऊँचे उठेंगे तब सैकड़ों हजारों नई चीजों के देखने की योग्यता हमारे पास स्वयं आ जायगी।

संस्कृत-साहित्य की शरण

हमारा विशाल संस्कृत-साहित्य हमारे आदर्शों और विचारों का ब्रह्मसर है। वहाँ से लोक की सरस्वती जन्म पाकर सबको प्रकाश और बल देगी। पुरातन संस्थाओं और सिद्धांतों का अध्ययन करने के बाद हम राष्ट्रगठन का सच्चा रहस्य जान पाएँगे। पौर-जानपद-सभाओं से साहित्य और समाज की परिषदों से श्रेणी निगम और पूग की समितियों से परिचय प्राप्त करने के लिये हमें अपनी संस्कृति की भूमि की शरण में जाना चाहिए, जिसका द्वार संस्कृत-साहित्य में खुला

हम महाकवि सूर्यमल की 'वीरसतसई' में से कुछ और दोहे उद्धृत करते हैं जिनमें वीर पत्नी और वीर पति के उदात्त हृदयोद्गारों की मार्मिक व्यंजना की गई है।

सहणी सबकी हूँ सखी, दो उर उलटो दाह।
दूध लजाणू' पूत अरु, वलय लजाणू' नाह॥

वीर क्षत्राणी के आत्मसम्मान की उच्च भावना इस दोहे में व्यक्त की गई है। वह सब कुछ सह सकती है, परंतु युद्धस्थल से पुत्र की भगदड़ से अपने दूध का अपमान और पति के कायरता-पूर्ण कृत्य से अपनी चूड़ियों का अनादर उसे असह्य है।

वेनाणी ढीलो घड़ै, मोकंधरो सँनाह।
विकसै पोयण फूल ज्यूं, पर दल दीठे नाह॥
नायण आज न मंडि पग, काल सुणीजै जंग।
धारौ लागै जो धणी, तो धण दीजै रंग॥

राजपूत रमणी सांसारिक सुख और सौंदर्य को नाशवान् समझती है। वह तो अपने पति के कर्म-सौंदर्य पर ही मुग्ध होती है। उसके दांपत्य प्रेम का उद्देश्य यह है कि उसका पति धर्म और मान-मर्यादा की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करे और वह उसके पीछे सती होकर स्वर्ग में उससे मिले। युद्ध की खबर सुनते ही वह नाइन से कहती है कि अभी तू मेरे पैरों पर मेंहदी न लगा। यदि मेरा पति युद्ध में वीर गति को प्राप्त हो गया तो सती होने के पहले मेंहदी लगाना उचित होगा। पहले दोहे में वह लोहार से कहती है कि वह उसके पति के कवच को जरा ढीला रखे क्योंकि शत्रुओं की सेना देखते ही उसका पति वीरोत्साह के संचार से कमल के फूल की तरह विकसित हो जायगा और उसका शरीर फूल उठेगा।

कंथ लखोजै उभय कुल, नाहँ घिरती छाँह।
मुड़िया मिलसी गींदवो, मिलै न धणरी बाँह॥

वीर क्षत्राणी युद्ध में जाते हुए पति से कहती है कि हे पति, अपने और मेरे दोनों कुलों की ओर देखना। कहीं युद्ध से विमुख

होकर दोनों कुलों को कलंकित न करना। यदि भाग आए तो तुम्हें अपना सिर तकिए पर ही रखकर सोना पड़ेगा। तुम्हारी प्रियतमा की बाँह सिर के नीचे रखने को नहीं मिलेगी।

हम कह चुके हैं कि चारणों ने अपने वीरकाव्यों में अपने आश्रयदाता वीर राजाओं के शौर्य और पराक्रम के अतिरिक्त लोक-वीरों के चरित्रों का भी चित्रण किया है। स्थानाभाव के कारण हम एक ही उदाहरण देकर संतोष करते हैं—

॥ गीत बड़ो साणोर ॥

प्रथम नेह भीनौ महाक्रोध भीनौ पछै,
लाभ चमरी समर झोक लागै ॥
रायकँवरी वरी जेण बागै रसिक,
वरी घड़ कँवारी तेण वागै ॥ १ ॥
हुवे मंगल धमलदसंगल वीर हक,
रंग तूठौ कमँध जंग रूठो ॥
सघण बूठो कुसुम वोह जिण मोड़ सिर।
विषम उण मोड़ सिर लोह बूठो ॥ २ ॥
करण अखियात चढियो भलां कालमी।
निबाहण वयण भुज बाँधियों नेत ॥
पँवारां सदन वर माल सूँ पूजियो।
खलों किरमाल सूँ पूजियो खेत ॥ ३ ॥
सूर बाहर चढे चारणों सुर हरी।
इतै जस जितै गिरनार आबू ॥
विहँड खल खींचियों तणा दल विभाड़े,
पौढियो सेज रण भोम पाबू ॥ ४ ॥

—कविराजा बाँकीदास।

इस गीत में बड़े रसात्मक ढंग से बतलाया है कि पाबू राठौड़ ने किस प्रकार गायों की रक्षा के लिये बड़े उत्साह के साथ अपने प्राण

अर्पण कर दिए। इस गीत में वीररस और शृंगाररस का अपूर्व सम्मिश्रण है।

हमने ऊपर जो उदाहरण दिए हैं, उनसे स्पष्ट है कि उनमें वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है। उनमें आज भी अपूर्व बल और प्राण है। हमारे विचार से वीर काव्य के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में मिलने कठिन हैं।

राष्ट्रीय भावना—

यह कहा जा चुका है कि चारणों ने आत्मसम्मान, मातृ-भूमिमान और विधर्मियों के हमलों से धर्म की रक्षा के कार्य में क्षत्रियों को प्रोत्साहन देने के लिये ही वीरकाव्य की रचना की थी। इस दृष्टि से समस्त चारण वीरकाव्य राष्ट्रीय काव्य के अंतर्गत आएगा, क्योंकि उसकी रचना के मूल में राष्ट्रीय हित की ही भावना है। भूषण को वीररस के कवि के साथ साथ राष्ट्रीय कवि भी माना जाता है। इधर आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र देशप्रेम की कविता के प्रवर्तक माने जाते हैं। परंतु भूषण के भी बहुत पहले यदि किसी को विशुद्ध राष्ट्रीय भाव की कविता रचने का सौभाग्य प्राप्त है तो वह दो चारण कवियों को है—दुरसा आढा और सूरायच टापरिया। दुरसा आढा को हम हिंदी का सर्वप्रथम राष्ट्रीय कवि मानते हैं। वह अकबर का समकालीन था। उसका जन्म वि० संवत् १५९२ और देहावसान संवत् १७१२ में हुआ था। उसके समय में सूरायच टापरिया भी विद्यमान था। इसके पहले किसी चारण या चारणेतर कवि ने राष्ट्रोद्धार की दृष्टि से शायद विशुद्ध राष्ट्रीय भावना का ऐसा संश्लिष्ट चित्रण नहीं किया। उसने भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के अमर योद्धा महाराणा प्रताप की प्रशंसा में 'विरुद छिहत्तरी' नामक ग्रंथ रचा था। उसके बनाए हुए राष्ट्रीय भाव के फुटकर गीत भी मिलते हैं। उसने 'विरुद छिहत्तरी' और राष्ट्रीय भाव की अन्य कविताएँ महाराणा प्रताप को आर्यधर्म, हिंदू-संस्कृति और आत्मसम्मान की रक्षा के पुनीत कार्य में प्रोत्साहित करने के लिये लिखी थीं। दुरसा स्वयं

वीर और स्वतंत्र प्रकृति का पुरुष था और वीररस का सिद्ध कवि था। उसकी 'विरुद छिहत्तरी' के प्रत्येक दोहे में देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना भरी है। 'विरुद छिहत्तरी' में से कुछ दोहे यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

लोपे हिंदू लाज, सगपण रोपै तुरक सूँ।
आरज कुलरी आज, पूँजी राण प्रतापसी ॥

अन्य क्षत्रिय राजाओं ने हिंदुत्व, मान-मर्यादा, आर्यधर्म, आत्मगौरव एवं स्वाभिमान को तिलांजलि दे स्वार्थवश अकबर को अपनी लड़कियाँ ब्याह दी थीं। कवि उनके इस कायरतापूर्ण कृत्य के प्रति हार्दिक खिन्नता प्रकट करता है और कहता है कि महाराणा ही उस समय आर्यधर्म और आर्यजाति का संरक्षक था, उसकी अमूल्य निधि था।

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिंदू अवर।
जागे जगदातार, पौहरे राण प्रतापसी ॥

अन्य हिंदू लोग अकबररूपी अँधेरी रात में नींद में सो रहे थे। परंतु उस समय स्वातंत्र्य समर का निडर सैनिक महाराणा प्रताप ही पहरा दे रहा था और हिंदू धर्म की रक्षा कर रहा था।

थिर नृप हिंदुस्थान, लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमीमान, पूजी राण प्रतापसी ॥

हिंदुस्थान के सब क्षत्रिय राजा स्वदेशाभिमान को तिलांजलि ले लोभवश अकबर के अधीन हो गए, परंतु भारत माता की मान-मर्यादा और गौरव के प्रति केवल महाराणा प्रताप पूज्य बुद्धि रखता था।

कलपै अकबर काय, गुण पुंगीधर गोडिया।
मिणधर छाबड़ माँय, पड़े न राण प्रतापसी ॥

अकबर रूपी सँपेरे ने अन्य राजाओं रूपी सब साँपों को लुभा लिया, परंतु वह मणिधारी महाराणा प्रतापरूपी सर्प को नहीं पकड़ सका। इस दोहे में कितना सुंदर और उपयुक्त रूपक है।

महाराणा के स्वर्गवास का समाचार पाकर अकबर उदास और स्तब्ध हो गया। अकबर की यह दशा देखकर दरबारियों को आश्चर्य हुआ; क्योंकि महाराणा के देहावसान पर बादशाह अकबर को प्रसन्न होना चाहिए था न कि उदास। उस समय दुरसा आढा ने अकबर के सामने यह छप्पय पढ़ा—

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी।
गौ आडा गवड़ाय, जिको वहतो धुर वामी॥
नवरोजे नह गयो, नगौ आतसाँ नवल्ली।
नगौ झरोखाँ हेठ, जेठ दुनियाँण दहल्ली॥
गहलोत राण जीति गयो, दसण मूँद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत शाह प्रतापसी॥

भावार्थ :—कवि कहता है कि ऐ गुहिलोत राणा प्रतापसिंह, तेरी मृत्यु पर अकबर ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और निःश्वास के साथ आँसू टपकाए, क्योंकि तूने अपने घोड़े को शाही दाग नहीं लगने दिए, अपनी पगड़ी को किसी के सामने नहीं झुकाया, तू अपना यश गवा गया, तू आजीवन अकबर से विरोध करता रहा और क्षात्रधर्म-रूपी रथ के धुरे को बाएँ कंधे से चलाता रहा। न तू नौरोज में कभी गया और न बादशाही डेरों में और न कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा रहा। तेरा रोब दुनिया पर गालिब था। अतएव तू मरकर भी सब तरह से जीत गया।*

इस छप्पय में दुरसा आढा ने यह आदर्श रखा है कि सांसारिक तथा मुल्की विजय या हार वास्तव में विजय या हार नहीं है। सच्ची विजय तो विधर्मी शत्रुओं का साहसपूर्ण सामना करते हुए

*—दे०—म० म० डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा रचित 'राजपूताने का इतिहास', जिसमें उन्होंने महाराणा प्रताप के वर्णन में उक्त छप्पय तथा उक्त बहुत से दोहे उद्धृत किए हैं। दे०—उनकी अलग प्रकाशित पुस्तक 'वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह', पृ० ४६-५० और पं० मोतीलाल मेनेरिया कृत 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा', पृष्ठ ४५-५०।

आत्मगौरव, मान-मर्यादा, स्वधर्म, स्वदेशाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा के हेतु प्राणोत्सर्ग करने में है। यही आदर्श मध्यकाल में चारणों ने अपने काव्य द्वारा क्षत्रिय-जाति को हृदयंगम कराया था और यही कारण था कि मुसलमानों द्वारा उनकी मुल्की हार होने पर भी वे स्वदेश, स्वधर्म तथा आत्मसम्मान की रक्षा के लिये शताब्दियों तक सामना करते रहे।

जो राष्ट्रीय भाव दुरसा ने अपनी कविता में रखा है, वही राष्ट्रीय भाव सूरायच टापरिया के इन सोरठों में व्यंजित है—

चंपो चीतोड़ाह पोरस-तणो-प्रतापसी।
सोरभ अकबर साह अलियल आभड़िया नहीं॥

चेला वंस छतीस, गुर घर गहलोतां-तणो।
राजा राणाँ रीस कहताँ मत कोई करो॥

महाकवि बाँकीदास ने भी राष्ट्रीय भाव की कविता की थी। निम्नलिखित पद्य (गीत) में उन्होंने हिंदू मुस्लिम-ऐक्य की कैसी मार्मिक भावना प्रकट की है। कवि की राजनैतिक दूरदर्शितापूर्ण निर्भीक भविष्यवाणी और स्पष्टवादिता प्रशंसनीय है।

गीत

आयो अँगरेज मुलकरे ऊपर, आहस लीधा खैंच उरा।
धणियाँ मरे न दीधी धरती, (वाँ) धणियाँ ऊभाँ गई धरा॥
महि जाताँ चींथाताँ महला, एदोय मरण तणा अवसाण।
राखोरे किँहिँक रजपूती, मरदाँ हिंदू की मुस्सलमाँण॥
पत जोधाण, उदैपुर, जैपुर, पह थ्याँरा खूटा परियाँण।
आँके गई, आवसी आँके, 'बाँके आसल' किया वखाँण॥

भक्तिकाव्य

देश में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित होने के बाद जिन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में भक्तिकाव्य का

आविर्भाव हुआ, उनका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा और लगभग उसी समय में उन्हीं परिस्थितियों के अनुरोध से राजस्थान में भी भक्ति-काव्य का प्रादुर्भाव हुआ। चारण जाति में कई भक्त कवि हो गए हैं। उनमें से बहुत प्रसिद्ध भक्त कवि हैं—महात्मा ईश्वरदास, महाकवि नरहरदास, साँयाझूला, केशवदास, गाडण, माधवदास दधवाड़िया, पीरदान लालस, रायसिंह सांदू, अलूकविया, रामनाथ कविया, ईश्वरदास बोगसा और ओपा आढा आदि।

चारण भक्तिकाव्य में भी पाँच भाव प्रधानतया लक्षित हैं—(१) दास्य या सेवक-सेव्य भाव, (२) वात्सल्य या जन्यजनक भाव तथा जन्य-जननी भाव, (३) सख्य या सखा भाव, (४) दांपत्य या माधुर्य या मधुर भाव जिसको पति-पत्नी भाव भी कहते हैं, (५) शांत भाव।

दास्य भाव की भक्ति में विनय और दीनता का प्राधान्य रहता है। इसके कुछ उदाहरण देखिए :—

विखमी वारलाज लिखमीवर, रखवण पण तूँ थीजरह।
ईसर अरज सुणी झट ईश्वर करण जिवायो जगत कह॥

—महात्मा ईश्वरदास।

म्हूँ वीदग किसा बागरी मूली, लागा दाँवण चवदे लोक।
हूँ हर थारे चाकर हलको, थूँ हर म्हारे मोटो थोक॥

—ओपा आढा।

साँयाझूला कृत 'नागदमण' और महाकवि नरहरदास कृत 'अवतारचरित्र' (कृष्णावतार) में वात्सल्य भाव की सुंदर व्यंजना मिलती है—

विहाणे नवे नाथ जागो वहेला, हुआ दोड़िवा धेन गोवाल हेला।
जगाड़े जसोदा जदूनाथ जागो, महीभाट खूमे नवे निद्ध माँगो।
जिमाड़े जिके भावता भोग जाँणी, परूसे जसोदा जमो चक्रपाणी।

—साँया झूला।

यशोदा प्रेमपूर्ण गीत गा गाकर कृष्ण को जगा रही हैं और प्रातःकाल ही उठकर वन जाने के पहले उन्हें कलेऊ करा रही हैं।

कहत सुआयो कुँवर कन्हैया, मोको माखन दैरी मइया।
गहि रह्यौ कान्ह मथनियाँ गाढी, थकित जसोदा चितवत ठाढी।
लैंउ बलाई मथन दे लालन, मेरे पूतहि दैहूँ माखन।

—नरहरदास।

इस पद्य में कृष्ण की यशोदा से हठपूर्वक मक्खन माँगने की बालसुलभ प्रवृत्ति का मनोमुग्धकारी चित्र है। कृष्णभक्त चारण कवियों ने बालकृष्ण के लोकरंजनकारी रूप के साथ साथ कृष्ण के लोकरक्षक रूप का भी संश्लिष्ट वर्णन किया है। सखाभाव की भक्ति में भक्त मित्रवर भगवान् के समक्ष अपने सुख-दुःख, हँसी-ट्ठा, हार-जीत और हानि-लाभ संबंधी विचार खुल्लमखुल्ला रख देता है। देखिए पीरदान और ईश्वरदास भगवान् को कैसे खरे उपालंभ-पूर्ण वचन सुनाते हैं :—

तूँ बल् हीणो निरगुण, सही छै पातिग सगलो।
तू अणरूप अकाज, निगुण अभीयागत निबलो॥
हाथ नहीं ताँहरे, पाँव बाहिरो प्रमेसर॥

—पीरदान लालस।

मुकंद मयेठ पड़ूडदायमाँय, ठावो मेंय कीध सवे हव ठाँय।
ठगाराय ठाकर हेकण घोय, पड़द्दोय नाँख परोहव प्रीय॥

—महात्मा ईश्वरदास।

माधुर्य भाव की कविता का उदाहरण हमें सम्मन बाई की रचनाओं में मिलता है—

वारीजी बिहारिजी की साँवरी सूरत पें।
साँवरी सूरत पे मोहिनी मूरत पें॥
धरि निज चरनन चरन पे ठाढे भूखन सहित लखे मेरे दर पें।
कहत 'सम्मन' स्याम सुखदायक मोमन भ्रमत चरन कमल पें॥
इतनी कहि कें चुप होय गई मन लाग गयो मोहन में।
करि गोपिन प्रेम रिझाई-लिये 'सम्मनी' के स्याम मिले छन में।

शांत भाव की व्यंजना ओपा आढा की कविता में बड़ी मार्मिक हुई है—

परसराम भज चाख अमृत फल, जन्म सफल हुय जासी।
पाछो वले अमोलक पंछी, इण तरवर कद आसी॥
कर जाणो तो कोई भलाई कीजै, लाह जन्म रो लीजै लोय।
पुरखाँ दो दिन तणाँ पामणा, किण सूँ मती विगाड़ो कोय॥

चारण कवियों ने 'पितुः शतगुणं माता' के सिद्धांत के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा की लोकमाता (जगदंबा) के रूप में भी भावना की है। वे जगदंबा को आदिशक्ति मानते चले आ रहे हैं। चारण जाति में आदि शक्ति या देवी के कई भक्त हुए हैं और उन्होंने परमात्मा की मातृत्व की भावना करते हुए उसके प्रति अनूठे हृदयोद्गार प्रकट किए हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

डाबर डेडरियाह, तरवर ज्यूँ पंछी तजे।
सेवक संकरीयाह, यूँ तो शरणे ईशरी॥

—शंकरदान आढा।

देवी नामरे रूप ब्रह्म उपाया, देवी ब्रह्मरे रूप मधु कीट जाया।
देवी मूलमंत्र रूप तूँ बडु बाला, देवी आपरी अबलीला विशाला॥

—महात्मा ईश्वरदास।

रहस्योन्मुख-भावना—

चारण भक्त कवि भी ईश्वर के साथ अपने साक्षात्कार का वर्णन करते हुए यत्र तत्र रहस्योन्मुख हो गए हैं। इस तरह की कविता भारतीय भक्तिपद्धति के अनुसार स्पष्ट और अनुभवगम्य है और रहस्योन्मुख काव्य के अंतर्गत आती है।

ईश्वरदास के 'हरिरस' में से उद्धृत निम्न पद्यों में उस परम रहस्यमयी सत्ता का अनूठा आभास मिलता है—

सरज्जिय आप त्रिविध संसार। हुवोमझ आपज रम्मण हार॥
नमो प्रति सूरज कोटि प्रकास। नमो बनमालिय लील विलास॥
नमो विगनान गनान विखंभ। थँभावण आभ धरा विणथंभ॥

दिठोमेयतूज तणो दीदार। सँसारय बाहर माँहि सँसार ॥
जाण्योहव ओफल छोड़ जिवन्न। पेखाँ तुवशाखायँ डालाँय पन्न ॥
लख्यो हवरूप पड़द्दो नलाह, मुरार परत्तख बाहर माँह।
गली गयो भ्रम घुटी गई गंठ, करी हरि बात लगाड़िय कंठ ॥

शृंगार या प्रेम काव्य

वीररस की कविता की तुलना में चारण कवियों ने शृंगाररस की कविता बहुत कम की है। 'प्रवीणसागर' नामक एक ग्रंथ प्रेम या शृंगार काव्य है। इसके रचयिता ६ या ७ व्यक्ति सुने जाते हैं, जिनमें अधिकांश चारण कवि थे। इसकी कविता का नमूना देखिए—

प्रेम तत्त्व सत्ता सकल, फेल रही संसार।
प्रेम सधे सोई लहे, परम जोति को पार ॥

नरहरदास कृत 'अवतारचरित्र' (रामावतार) तथा माधोदास कृत 'रामरासो' में भी शृंगार रस की अच्छी कविता मिलती है। चारणों का शृंगार या प्रेमकाव्य मर्यादाबद्ध और लोकसम्मत है। चारण कवियों ने हिंदी के रीतिकाल के साधारण कवियों की तरह नखशिख, नायिकाभेद, आदि के वर्णन में अपनी कवित्वशक्ति का अपव्यय नहीं किया है। चारण शृंगार काव्य में हमें जो प्रेम का स्वरूप मिलता है वह बहुत स्वाभाविक है। यह प्रेम पारिवारिक या सामाजिक जीवन में ही प्रस्फुटित हुआ है, लोकव्यवहार से विच्छिन्न और विलासमय नहीं है।

शृंगार रस की कविताएँ लोकगीतों में भी मिलती हैं, परंतु प्रायः उनके रचयिताओं का पता नहीं है। विप्रलंभ शृंगार का यह वेदनापूर्ण उदाहरण देखिए :—

जिण बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी।
बिलखतड़ी रह जाय, जोगण करगो जेठवा ॥
वे दी से असवार, घुड़लाँरी घूमर लियाँ।
अबला रो आधार, जको न दी से जेठवा ॥

ताला सजड़ जड़ेह, कूँची ले काने थयो।
खुलसी तो आयेह, जड़िया रहसी जेठवा।

—ऊजली।

महादान मेहडू की श्रृंगार रस की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। संयोग-श्रृंगार का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है :—

आवा डाबर नेह अवारू, सेणो रहो हमारे सारू।
धजराजों ने बाल् बँधावो, लाडी छोटी कंठ लगावो।
म्हाँका सूँस छोड़ मत जावो, वालम मेह घरे बरसावो॥

—ईश्वरदास।

हास्यरस—

चारण काव्य में हास्य रस की कविता बहुत कम उपलब्ध होती है। ऊमरदान लालस ने अपने 'ऊमर काव्य' में पाखंडी साधुओं का जहाँ जहाँ उपहास किया है, वे स्थल हास्य से ओतप्रोत हैं :—

मोडाँ दुग्गह मालिया, गाबर फोगे गाल।
भोगे सुंदर भाँमणी, मुफत अरोगे माल॥
खीराँ वाँनी ज्यूँ खरा, वीराँ छाँनी व्याध।
ध्यानी पग धाराँ धरे, सीराँ कानी साध॥

इसी तरह बाँकीदास ने भी अपने ग्रंथ 'मावड़िया मिजाज' में कायर पुरुषों का बड़ा उपहास किया है :—

मावड़िया अंग मोलिया, नाजुक अंग निराट।
गुपत रहे ऊमर गमै, खाय न निज वल खाट॥
बिना पोटली वाणियो, बिना सींग रो बैल।
कदियक आवे कोटड़ी, छिपतो-छिपतो छैल॥

नैणाँरा सोगन करै, भैमाने सुण भूत।
रामत ढुलांरी रमे, राँडोलीरा पूत॥
प्रगटे वाँम प्रवीण रो, नर निदाढियो नाम।
नर मावड़िया नाम त्यूँ, बिना पयोधर वाम॥

करुणरस—

चारण प्रबंध काव्यों में से यथास्थान अन्य रसों के वर्णन के साथ करुण रस का भी अच्छा वर्णन मिलता है।

मुख वचन न आवत मन मलीन। दुख सागर बूड़त भए दीन॥
रघुवंश तिलक लखि समय राम। उठि चले छाँड़ि धन धरा धाम॥
ज्यों परदेसी पाहुनौ, राखेहूँ न रहाई।
परजा गत संपति प्रभुत्व, छाँड़ि चले रघुराई॥

मुरझाय पर्‌यौ नृप भूमि माँहि। हिय फूट्यो मनहुँ सुधि रही नाहिं।
पुरजन उदात रोदत पुकारि, नैरास भये सब पुरुष नारि।

—नरहरदास के 'अवतारचरित्र' से।

संवत् १९५६ के भयंकर दुर्भिक्ष से पीड़ित मारवाड़ के लोगों की अन्न जल और धन के अभाव से जो दयनीय दशा हुई थी उसका मर्मस्पर्शी और करुणोत्पादक वर्णन कविवर ऊमरदान लालस ने किया है—

बाल़क बरल़ावे आखा अभिलाखै। भू भू बू बू बिन भाखा नहीं भाखै॥
सूये सीरावण व्यालू ले बाँसे। वेल़ा व्यालू री सीरावण साँसे॥
खावण पीवण री खासा रग खूटी। छपनै जीवण री आशा जग छूटी॥
माता पितु बेटी बेटा भल मरिया। प्यारा प्यारा नै मुसकल परहरिया॥
गद गद वाणी दृग पाणी गल़ ल़ाटा, कँगला बँगला में कीना कल़ ल़ाटा॥

प्रकृतिवर्णन—

हिंदी काव्य में प्रकृतिवर्णन के दो स्वरूप मिलते हैं—प्रकृति का उद्दीपन के रूप में वर्णन और उसको आलंबन मानकर संश्लिष्ट रूप से वर्णन। ये दोनों प्रकार के वर्णन चारण प्रबंध काव्यों में उपलब्ध होते हैं।

नरहरदास ने 'कृष्णावतार' में प्रकृति की छटा का विशद वर्णन किया है—

झरि छूटे वल्ली द्रुम फल भर। झरे पत्र कानन भए झंखर।
झंझा मारुत कैसी झपटें। लुवाँ बहत अति ताती लपटें।
आषाढ़ जलद अकास। तिरंग रंग प्रकास॥
संघट्ट घन नभ घोर। अरु घटा चढ़ी चहुँ ओर॥
बगपति उज्जवल बान। प्रतिघटा मध्य प्रमान॥
चहुँ ओर बीज चमंक। नहिं दुरत नभहि निसंक॥
मिलि जलद पवन मरोर। अति गरज धुनि चहुँ ओर॥
सरसरित दादुर मोर। झिल्ली खमोर झिंगोर॥
त्रिण गुल्म लता अंकुरित तास। वसुधा सुनील अंबर विलास॥

यह वर्णन संस्कृत कवियों की शैली पर प्रकृति को आलंबन के रूप में मानकर किया गया है। इस शैली का वर्णन हिंदी में कम मिलता है। इसी तरह का प्राकृतिक बर्णन कविवर उज्ज्वल फत्ते-कर्ण ने अपने गंथ 'पत्रप्रभाकर' में किया है—

स्वभावज वृच्छलता सुम तोय। गृहो गृह बाग बिनाश्रम होय।
द्विरेफ जहाँ मधु छत्त बनाय। सकाकिल कोकिल शब्द सुनाय।
रचै शिखी ताण्डव बोले कीर। सुशीतल मंद सुगंध समीर।

प्रकृति का उद्दीपन के रूप में वर्णन हमें शिवबख्श पालावत की कविता में अच्छा मिलता है—

बादल नहिं दल विरहरा, आया मिलि अप्रमांण।
सोर सिखंड्या नहीं सखी, जोर नकीवां जाँण॥
घूमी घण हररी घटा, विरछां लूमी वेल।
नरा विलूँभी नारियाँ, खरो हजूमी खेल॥

नीतिकाव्य

चारण जाति में कई कवि हुए हैं, जिन्होंने लोकनीति को अपने काव्य का विषय बनाया है। चारण नीति-कवियों में महाकवि ईश्वरदास, नरहरदास, कविराजा बाँकीदास, बारहठ स्वरूपदास, स्वामी गणेश पुरी, महाकवि सूर्यमल मिश्रण, कविवर ऊमरदान, कृपाराम खिड़िया,

श्रीकृष्णसिंह सोदा और पांचेटिया निवासी श्री शंकरदान आढा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने सदाचार, युद्धनीति, व्यसन-परित्याग, विद्वत्ता, मित्रता, दानशीलता, विनय, कर्मशीलता, संयम, राजनीति, लोकसेवा, परोपकार आदि विषयों पर भावुकता भरी सूक्तियाँ रची हैं। इन रचनाओं को पढ़ने से मालूम होता है कि इन कवियों ने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों तथा प्रत्यक्ष व्यवहारों में अपने हृदय को रखकर अमूल्य अनुभव प्राप्त किया और उसे बहुत मार्मिक ढंग से जनता के सामने रखा। कई चारण कवियों की नीति-विषयक कविताएँ सर्व-साधारण के मुँह पर हैं और लोक-जीवन पर अपने प्रभाव द्वारा काव्य की व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध कर रही हैं। हम यहाँ पर कुछ कवियों की प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचना उदाहरणस्वरूप देते हैं :—

जण जण रो मुख जोय, नासत दुख कहणों नहीं।
काढण दे वित कोय, रीराया सूँ राजिया ॥ १ ॥
उपजावे अनुराग, कोयल मन हरषित करे।
कड़वो लागे काग, रसणा रा गुण राजिया ॥ २ ॥
पल माही कर प्यार, पल माही पलटे परा।
वे मुतलब रा यार, रहजे अलगो राजिया ॥ ३ ॥
सुख में प्रीति सवाय, दुख में मुख टाला दिये।
जेके कहसी जाय, राम कचेड़ी राजिया ॥ ४ ॥
डूँगर लागी लाय, जोवे सारोही जगत।
प्राजलती निज पाय, रती न सूझे राजिया ॥ ५ ॥

—कृपाराम खिड़िया*।

बस राखौ जीभ कहै इम बाँको, कड़वा बोल्याँ प्रभत कसी।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जसी ॥

—कविराजा बाँकीदास।

---

* कवि ने अपने नौकर राजिया का नाम प्रत्येक सोरठे के अंत में रखा है। इसी शैली के भैरिया, किसनिया, नाथिया, मोतिया आदि के सोरठे राजस्थान में प्रचलित हैं।

अहर्निस प्रजा रच्छा अखंड। दीजिये जथा अपराध दंड॥
पीड़िये प्रजा नहिं निरपराध। शुचिमान भंग करिये न साध॥
—नरहरदास (अवतारचरित्र)।

संक्षिप्त आलोचना

भावपक्ष—हम ऊपर चारण काव्य में व्यंजित विभिन्न भावों के उदाहरण दे चुके हैं। उन उदाहरणों से मालूम होगा कि चारण काव्य का भावपक्ष बड़ा ही प्रबल है। वीर काव्य तथा राष्ट्रीय काव्य के प्रसंग में हमने देखा कि चारण कवियों की पहुँच मानव-हृदय की सूक्ष्म दशाओं तक है। उन्होंने भावोत्कर्ष के लिये साधारण लोक-जीवन से सामग्री लेकर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि द्वारा सफल भावानुभूति कराई है। उदाहरण के लिये वीर-काव्य के प्रसंग में वीरदर्प का चित्रण देखिए। उनका काव्य जीवन से घुला-मिला है।

कलापक्ष—चारण काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का निर्वाह है। चारण कवियों ने डिंगल और पिंगल (ब्रजभाषा) दोनों में कविता की है। पिंगल की कविता में कहीं डिंगल शब्द भी प्रयुक्त किए गए हैं। अधिकांश चारण कवियों की रचनाओं की भाषा डिंगल है। कतिपय कवियों की वीररस की कविता की भाषा दुरूह हो गई है और शब्द बहुत तोड़े मरोड़े गए हैं। परंतु कुशल कवियों की कविता में—यथा दुरसा आढा, ईश्वरदास—डिंगल का बड़ा सरल और सरस रूप मिलता है।

डिंगल की अपनी वर्णमाला और छंद-शास्त्र है। चारण कवियों ने अधिकतर दूहा, सोरठा, गीतछंद, गाहा, पद्धरि आदि छंदों का प्रयोग किया है। कवियों को जैसा वर्णन करना अभीष्ट था, प्रायः उसी के अनुकूल उन्होंने छंद चुने हैं, जिनसे कविता का उत्कर्ष हुआ है।

चारण कवियों की कविता में अलंकार स्वभावतः आए हैं। उन्होंने अलंकारों को परिश्रम-पूर्वक पांडित्य-प्रदर्शन के लिये नहीं रखा

है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, श्लेष और यमक चारण काव्य में यथास्थान मिलते हैं। भावोत्कर्ष के लिये उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, आदि समता या सादृश्यमूलक अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। प्राचीन परिपाटी की चारण कविता में 'वयण सगाई' (वर्णसंबंध) नामक अलंकार सर्वत्र मिलता है। परंतु पिछले समय के कवि उसे इतना आवश्यक नहीं समझते। स्वभावत: जहाँ वयणसगाई का प्रयोग हुआ है वहाँ ते वह सुंदर मालूम होता है, परंतु कतिपय कवियों की कविता में उसका प्रयोग श्रमसाध्य है और खटकता है।

चारण जाति के पतन के साथ उसके काव्य का पतन

वीर काव्य के प्रसंग में हम लिख चुके हैं कि मुसलमानों द्वारा अपनी मुल्की हार होने पर भी राजपूत अपने धर्म और मान-मर्यादा की रक्षा का प्रयत्न करते रहे। मुस्लिम काल में उनका यह प्रयत्न शताब्दियों तक चलता रहा। संवत् १९१४ के बाद भारत में अँगरेजी राज्य पूर्णतया स्थापित हो गया और राजपूत राजाओं ने अँगरेजों से संधियाँ कर लीं। धीरे धीरे पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से वे पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँग गए। अब वीरोत्साह और शौर्य के प्रदर्शन के लिये क्षेत्र ही नहीं रह गया। राजपूत जाति अब अपने पूर्वजों की गौरव-गाथा पर अभिमान करने में ही संतोष करने लगी और स्वयं अकर्मण्य हो गई। राजपूत जाति के साथ चारण जाति का भी पतन हो गया। उसने भी अपने प्राचीन उज्ज्वल आदर्शों को भुला दिया। राजपूत प्राय: कोरी खुशामद से भरी कविता पसंद करने लगे और अनेक चारण कवि उन्हें कोरे प्रशंसात्मक काव्य सुनाने लगे। इस प्रकार काव्य का दुरुपयोग होने लगा। इस प्रकार की कविता तुकबंदी मात्र है। स्व० ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य ऐसी तुकबंदी को धृष्ट काव्य कहते थे। उन्होंने चारण काव्य के पतन पर लिखा है—
"आज अपने देश या हिंदू जाति के हित के लिये अपनी बलि देनेवाला एक भी महाराणा प्रताप या शिवाजी दिखाई नहीं देता, जिसकी

[दे० भीटा मुहर ५७-६२, पृष्ठ ५६]। राजा धनदेव और अमात्य जनार्दन की मुहरों की चर्चा श्री राय कृष्णदास जी के लेख में है ही।[1]

ऐतिहासिक दृष्टि से सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बहुत सी ऐसी मुद्राएँ हैं जिन पर रोमदेशीय मनुष्यों की आकृति के सदृश वृद्ध का मस्तक और युवा का मस्तक बना हुआ मिलता है। कुछ मुहरों पर एक खड़ी हुई देवी की सपक्ष मूर्ति है जो दोनों हाथों में सामने की ओर कोई माला जैसी वस्तु पकड़े हुए है। गुप्त-युग के लिये रोम देश के साथ संपर्क का प्रमाण कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। रोम के सम्राटों के साथ भारतीय नरेशों का प्रणिधि-संबंध प्रथम शताब्दी से ही शुरू हो गया था। मैक्रिंडिल ने रोम और यूनानी लेखकों के आधार से जो इतिवृत्त एकत्रित किए हैं उनसे विदित होता है कि सीजर आगस्टस (२७ ई० पू०) के दरबार में शक और भारत के राजदूत पहुँचे थे। डिअन कैसिअस ने दूसरी शती में लिखे हुए अपने रोम के इतिहास में आगस्टस के पास गए हुए कितने ही भारतीय दूत-मंडलों का उल्लेख किया है। इतिहासकार फ्लोरस के अनुसार भारतीय प्रणिधि-वर्ग सम्राट् ट्राजन (९९ ई०) से भी मिला था। कांसटेंटाइन महान् (३२४ ई०) के यहाँ भी भारतीय राजदूत पहुँचे थे। ऐतिहासिक मर्सेलिनस के अनुसार एक भारतीय दूत-मंडल सम्राट् जूलिअन (ई० ३६१) से मिलने के लिये गया था जो अपने साथ में उपहार की बहुमूल्य सामग्री लाया था। सन् ५३० में भारतवासियों ने एक दूतवर्ग कांस्टेंटिनोपिल नगर में भेजा था[2]। इस तालिका से विदित होता है कि भारतीय राजदूतों के पश्चिम प्रयाण की परंपरा रोम-देशीय सम्राटों के समय लगभग छः सौ वर्षों तक रही। गुप्तकाल में इस प्रकार की प्रथा को व्यापारिक उन्नति के कारण और भी प्रोत्साहन

१—दे०—'काशी-राजघाट की खुदाई' शीर्षक पिछला लेख पृ० २१३।—सं०।

२—दे०—मैक्रिंडिल, एंशेंट इंडिया इन क्लासिकल लिटरेचर (१९०१), पृ० २१२-२१४।

मिला होगा। सम्राट् जूलिअन के पास जो राजदूत गए थे, वे संभवतः विजयी समुद्रगुप्त की ओर से भेजे गए थे। इस दृष्टि से काशी में, जो उत्तरापथ के व्यापार की सबसे बड़ी मंडी थी, जिसे व्यापारी वर्ग लाभ के कारण 'जितवरी' कहकर पुकारते थे, रोमदेशीय मुद्राओं की प्राप्ति सहज ऐतिहासिक परंपरा का परिणाम है। प्राचीन काशी में इस प्रकार की और भी सामग्री के मिलने की आशा रखनी चाहिए।

काशी प्राचीन पुरियों की सम्राज्ञी है। उसका नामकरण जिस उदारता से हुआ है उतना सौभाग्य शायद ही किसी दूसरे स्थान को प्राप्त हुआ हो। युवंजय जातक (जातक सं० ४६०) में कहा गया है कि काशी का एक नाम रम्म या रम्य था। उदय जातक के अनुसार इसका नाम सुरुंधन था। संभवतः गंगा-गोमती के बीच में इसकी सुदृढ़ स्थिति के कारण यह नाम प्राप्त हुआ था। चुल्लसुतसोम जातक में इसे सुदस्सन अर्थात् अत्यंत दर्शनीय नगरी कहते थे। सोणं-दन जातक के अनुसार इसकी संज्ञा ब्रह्मवद्धन थी। यह नाम कितना सार्थक है! काशी भारतीय ज्ञान की अभिवृद्धि में सदा से अग्रणी रही है। खंडहाल जातक में काशी को पुष्फावती (=पुष्पवती) कहा गया है जो नाम आज भी काशी के लिये अन्वितार्थ है। इस पुरातन परंपरा से समृद्ध वाराणसी पुरी को भारतीय पुरातत्त्व के क्षेत्र में भी अपना समुचित स्थान ग्रहण करना योग्य है। राजघाट की वस्तुएँ उसी दिशा का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

———

हिंदी का चारण काव्य

[लेखक—श्री शुभकर्ण बदरीदान कविया, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

चारण जाति का संक्षिप्त परिचय

चारण जाति का अस्तित्व बहुत प्राचीन काल से है। अपने पवित्र आदर्श और कल्याणकारी लोकव्यवहार के कारण चारणों को समाज में सदा सम्मान प्राप्त रहा। प्राचीन काल में चारण जाति भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में निवास करती थी[१]। मध्यकाल के कुछ पहले से अब तक वह अधिकतर राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में निवास करती चली आ रही है। उसका प्रधान ध्येय लोककल्याणार्थ क्षत्रिय जाति में शूरवीरत्व और साहस का संचार कर उसे लोक-रक्षा में तत्परता के साथ दत्तचित्त रखना और उसे समय समय पर सद्धर्म और सत्कर्त्तव्य का ज्ञान कराकर सन्मार्ग पर चलाना था। चारण जाति के सभ्य स्वयं सत्यवक्ता, स्वातंत्र्यप्रिय, त्यागी, कर्मशील और वीर होते थे। स्व० ठाकुर किशोरसिंह जी, स्टेट हिस्टोरियन पटियाला राज्य, ने 'चारण' शब्द की यह निरुक्ति बतलाई है—'चारयन्तीति चारणाः' अर्थात् जो देश का संचालन-कार्य, नेतृत्व करें एवं देशभक्ति को प्रोत्साहन दें वही चारण हैं[२]।

१—संक्षिप्त चारण ख्याति पृ० ६, लेखक म० म० कविराजा मुरारीदान, जोधपुर।

२—अ० भा० चारण-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन की रिपोर्ट, पृ० ४१, टिप्पणी।

काव्य-परंपरा

चारणों में काव्य-प्रतिभा परंपरागत और स्वाभाविक होती थी। उनमें से बहुत से आशुकवि होते थे और उनको सैकड़ों कविताएँ कंठस्थ होती थीं। वे अपनी कविताएँ लिखते बहुत कम थे और उनमें अपना नाम भी प्रायः बहुत कम देते थे। इसलिये बहुत सी चारणों की रची हुई कविताएँ विस्मृति के गर्त में चली गईं और जो उपलब्ध हैं उनमें से कितनी ही कविताओं के रचयिताओं का पता नहीं है। प्रारंभ से ही अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने और अपने कर्तव्योपदेशों का क्षत्रिय जाति पर चिरस्थायी और गहरा प्रभाव डालने के लिये चारणों ने कविता को अपना साधन बनाया था। विक्रम की १२वीं शताब्दी के भी पहले से, अपभ्रंश काल से आज तक चारण जाति में सैकड़ों कवि हुए हैं जिनमें से कुछ कवि इतने लोकप्रिय और प्रसिद्ध हुए हैं कि उनके समान और कवि हिंदी में बहुत कम मिलेंगे, जैसे राष्ट्रीय कवि दुरसा आढा, महात्मा ईश्वरदास, साँया झूला, महाकवि नरहरदास बारहठ, स्वरूपदास, महाकवि बाँकीदास, कृपाराम, खिड़िया, महाकवि सूर्यमल, कविराजा मुरारीदान, कविराजा श्यामलदास, स्वामी जी गणेश पुरी, ऊमरदान लालस और ओपा आढा इत्यादि। १२वीं और १३वीं शताब्दी के चारण कवियों की रचनाएँ अपभ्रंश भाषा में हैं, जो उस समय लोक-भाषा थी। कुछ कवियों को छोड़कर जिन्होंने व्रजभाषा (पिंगल) में सरस काव्य-रचना की है, १३वीं शताब्दी के बाद के अधिकांश चारण कवियों ने डिंगल* भाषा को अपनी कविता का माध्यम बनाया था। डिंगल साहित्य को जितना चारण कवियों ने अपने ग्रंथरत्नों से सजाया उतना शायद किसी ने नहीं। डिंगल भाषा का जैसा परि-

---

* डिंगल भाषा या मरु भाषा अपभ्रंश काल के बाद से राजस्थान की लोकभाषा रही है। डिंगल भाषा अपभ्रंश से निकली है।

मार्जित और सुललित स्वरूप चारण-काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र बहुत कम मिलता है। आगे के विवेचन से विदित होगा कि चारण काव्य भगवद्भक्ति, स्वातंत्र्य, स्वावलंबन, वीरोत्साह, प्रेम, औदार्य, विनय, शील, आत्मत्याग और आत्मसम्मान आदि मानव-हृदय के उदात्त भावों से ओतप्रोत है। उसमें केवल वीर रस ही नहीं, ईश्वरभक्ति, शृंगार, वात्सल्य, करुण, हास्य आदि रसों की भी उत्कृष्ट व्यंजना हुई है।

कवींद्र रवींद्र तो चारण काव्य का श्रवण कर उस पर मंत्रमुग्ध हो गए। आपने राजस्थान रिसर्च सोसायटी के समक्ष १८ फरवरी १९३७ को भाषण देते हुए चारण काव्य की इस प्रकार हार्दिक प्रशंसा और सच्ची आलोचना की थी—"भक्ति-साहित्य हमें प्रत्येक प्रांत में मिलता है। सभी स्थानों के कवियों ने अपने ढंग से राधा और कृष्ण के गीतों का गान किया है। परंतु अपने रक्त से राजस्थान ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है और इसका कारण भी है। राजपूतों के कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकताओं का स्वयं सामना करते हुए युद्ध के नक्कारे की ध्वनि के साथ स्वभावत: अयत्नज काव्यगान किया। उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव के तांडव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था। क्या आज कोई अपनी कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की रचना कर सकता है? राजस्थानी भाषा के प्रत्येक दोहे में जो वीरत्व की भावना और उमंग है, वह राजस्थान की मौलिक निधि है और समस्त भारतवर्ष के गौरव का विषय है। वह स्वाभाविक, सच्ची और प्रकृत है। मेरे मित्र क्षितिमोहन सेन ने हिंदी-काव्य से मेरा परिचय कराया। आज मुझे एक नई वस्तु की जानकारी हुई है। इन उत्साहवर्धक गीतों ने मेरे समक्ष साहित्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है। मैंने कई बार सुना था कि चारण अपने काव्य से वीर योद्धाओं को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया करते थे। आज मैंने उस सदियों पुरानी कविता का स्वयं अनुभव किया। उसमें आज भी बल और

ओज है। भारतवर्ष चारण काव्य के सुसंपादित संस्करण की प्रतीक्षा कर रहा है*।

स्व० ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य के शब्दों में "मुगल राज्य के पतन तक या यों कहिए कि विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक वि० सं० १९१४ की क्रांति के पहिले राजपूताना और मध्यभारत के राज्यों में डिंगल (जिसमें अधिकांश चारण कवियों ने कविता रची है) का बड़ा दौरदौरा था। उस समय की डिंगल की उन्नति की तुलना में व्रजभाषा का नामोल्लेख करना डिंगल का अपमान करने के समान है। विक्रम की १३ वीं या १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर १९ वीं शताब्दी के अंत तक इस भाषा में अच्छे अच्छे कवि हो गए हैं। इस भाषा के साहित्य में इन छः सौ वर्षों की घटनाओं का ही उल्लेख है।"

रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा और राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता आदि संस्थाओं का कार्य प्रशंसनीय है, जिन्होंने कुछ चारण कवियों के ग्रंथों का संपादन तथा चारण काव्य को प्रकाश में लाने का कार्य किया है।

हिंदी की प्रबंध तथा मुक्तक रचना की प्रणाली चारण-काव्य में भी लगभग १४वीं शताब्दी के बाद से चली आ रही है। चारण कवियों को प्रबंध-रचना और मुक्तक-रचना दोनों में प्रायः अच्छी सफलता मिली। उदाहरण के लिये महाकवि नरहरदास को लीजिए। उन्होंने अपने विशद ग्रंथ 'अवतारचरित्र' में २४ अवतारों का अत्यंत सरस और अनूठा वर्णन किया है। उक्त ग्रंथ में 'रामावतार' और 'कृष्णावतार' उच्चकोटि के प्रबंध काव्य हैं। लोकप्रियता और काव्यत्व की दृष्टि से 'अवतारचरित्र' को यदि पश्चिमीय भारत का 'रामचरितमानस' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। तीसरा उच्च कोटि का प्रबंध काव्य माधोदास देवल विरचित 'रामरासो' है। इसको डिंगल भाषा का रामायण कहना चाहिए। रामावतार, कृष्णावतार

---

* माडर्न रिव्यू, दिसंबर १९३८, पृष्ठ ७१०, 'दि चारनस् आव् राजपूताना'।

और रामरासो—इन तीनों प्रबंधकाव्यों में विभिन्न मानव-दशाओं और परिस्थितियों का समावेश है और उनका वर्णन बहुत ही रसात्मक है।

चारण कवियों ने पौराणिक कथाओं के आधार पर कुछ छोटे प्रबंधकाव्य भी लिखे हैं—जैसे साँया झूला कृत 'नागदमण', लाँगीदान कृत 'ओखाहरण' (उषाहरण) और बारहठ मुरारिदासकृत 'विजैव्याव' जिसमें रुक्मिणी-हरण का सरस वर्णन है। कई चारण कवियों ने ऐतिहासिक इतिवृत्तों, या शूरवीर क्षत्रिय राजाओं तथा लोकवीरों की जीवन-गाथाओं पर भी प्रबंधकाव्य रचे हैं, जैसे सूजा वीठू कृत 'राव जैतसी रा छंद', कवि राजा करनीदान कृत 'सूरजप्रकाश', जिसमें जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी की युद्धवीरता आदि का वर्णन है, वीर भाण रतनू कृत 'राजरूपक', महाकवि सूर्यमल कृत 'वंशभास्कर', सोन्याण निवासी ठाकुर केसरीसिंह बारहठ कृत 'प्रतापचरित्र', 'दुर्गादास (राठौड़) चरित्र', 'राजसिंह चरित्र' और पाबूदान आशिया कृत 'पाबू चरित्र'। इनमें वीरोल्लास की बहुत ही मार्मिक और सरस व्यंजना है।

चारण कवियों ने मुक्तक पद्य हजारों की संख्या में रचे हैं। मुक्तक पद्यों में 'गीत छंद' और 'दूहा छंद' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये गीत और दोहे अनेक विषयों पर लिखे गए हैं और इनमें सभी रसों की सुंदर व्यंजना हुई है।

चारण-काव्य की आलोचना तो दूर रही, इसका अभी तक शोध और सूक्ष्म तथा गंभीर अध्ययन भी नहीं हुआ है। इस विषय पर इतनी सामग्री है कि उसके शोध और अध्ययन में अनेक शोधकों और लेखकों की आयु भी अपर्याप्त होगी। उपलब्ध सामग्री के विचार से भी यह एक बृहत् ग्रंथ का विषय है। इस निबंध में हम इस विषय का संक्षिप्त और साधारण परिचय मात्र करा सकेंगे। हम अपनी सुविधा के लिये डिंगल और पिंगल (ब्रजभाषा के) चारण-काव्य को चार मोटे विभागों में विभक्त करते हैं—(१) वीर काव्य, (२) भक्ति काव्य, (३) शृंगार या प्रेम काव्य और (४) नीति काव्य। अब

हम इनमें से प्रत्येक का संक्षिप्त रूप से सोदाहरण परिचय कराएँगे।

वीर काव्य

हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों ने उसकी ग्रंथराशि का विषय के अनुसार वर्गीकरण करते हुए जो काल-विभाग निर्धारित किया है, उसमें आदि काल (संवत् १०५०-१४००) का तो नामकरण ही चारणों के वीर काव्य के आधार पर किया गया है। आश्चर्य की बात है कि वे आदि काल को कहते तो चारणों का वीरगाथा काल हैं, परंतु वे एक भी चारण कवि या उसके द्वारा रची हुई वीरगाथा का यथोचित उल्लेख नहीं करते। यदि किसी इतिहासकार ने ऐसा किया भी है तो वह नहीं के बराबर है। इस काल के विवेचन में उन्होंने जिन कवियों के नाम दिए हैं, वे सिवाय एक या दो के प्रायः सब चारणेतर हैं। उन्होंने जिन ग्रंथों को आदि काल में स्थान दिया है, उनमें से 'बीसलदेव रासो' के सिवाय शायद सब संदिग्ध हैं। बीसलदेव रासो को काव्य-कला की दृष्टि से साधारण कोटि का वर्णनात्मक ग्रंथ माना गया है।

यदि कोई व्यक्ति हिंदी साहित्य का इतिहास उठाकर वीर हृदय के उदात्त भावों का आस्वादन करने के लिये उसमें से वीरगाथा काल का प्रकरण पढ़े तो उसे निराश हो जाना पड़ता है। वीरगाथा काल के प्रकरण में जिन ग्रंथों का उल्लेख किया गया है, उनसे राजस्थान के लोकवीरों और वीरांगनाओं द्वारा आर्यधर्म, आर्यगौरव और स्वतंत्रता की रक्षा के लिये किए गए साहसपूर्ण वीरोचित सदुद्योगों का कुछ भी पता नहीं चलता और न वीररस का आस्वादन होता है। अभी जो वीरगाथा काल माना जाता है, उसमें तो अपभ्रंश काल से आदि काल की ओर परिवर्तन हो रहा था और शायद वीरकाव्य का प्रारंभ मात्र ही हो पाया था। हिंदी-साहित्य के इतिहासों में वीरगाथा काल को संवत् १४०० के थोड़ा पहले ही समाप्त कर दिया जाता है। हमारे विचार से सच्चा वीरकाव्य संवत् १४०० से उपलब्ध होता है और १६वीं और १७वीं शताब्दी में वह परम उत्कर्ष को पहुँचता है।

यों अपभ्रंशकाल से आज तक वीरकाव्य की रचना हो रही है। यह सत्य है कि हर्षवर्धन के बाद हिंदू भारत का पतन हुआ और देश में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित होने लगा। परंतु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि हिंदू जाति विनष्ट नहीं हो गई। उत्तरी भारत में मुसलमानों से पराजित होने पर तत्कालीन क्षत्रिय राजाओं ने अपनी खोई हुई शक्तियों का पुन: संगठन किया और पश्चिमीय भारत में नए राज्य स्थापित किए। जब जब वे मुसलमानों से पराजित हुए, उन्होंने अपने धर्म, संस्कृति, आचार-विचार और स्वातंत्र्य-प्रेम को नहीं छोड़ा। यवनों से पादाक्रांत उत्तरी भारत की निस्सहाय हिंदू जाति के वे ही संरक्षक थे। उन्होंने अपने नवनिर्मित राज्यों में आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति और हिंदू आदर्शों को प्रश्रय दिया। उनका स्वाधीनता, मानमर्यादा और सभ्यता की रक्षा का यह प्रयत्न शताब्दियों तक जारी रहा*। शासक जाति होने के कारण मुसलमान राजपूतों से अधिक शक्तिशाली थे, परंतु राजपूत पूर्ण साहस के साथ मुसलमानों का सामना करते रहे। इसी समय में चारण कवियों ने अपने ओजस्वी वीर काव्य की रचना की और उसके द्वारा वीरों को अपने सदुद्देश्य की सिद्धि के लिये प्रोत्साहित किया।

हमारी सम्मति में यही समय वीर काव्य की रचना के लिये उपयुक्त था। जब मुसलमानों ने बलपूर्वक हिंदुओं को मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य किया, तो धर्मप्राण हिंदुओं में भी प्रतिघात की भावना जाग्रत हो गई और राजपूतों ही ने नहीं, ब्राह्मणों और वैश्यों तक ने शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर मुसलमानों से लोहा लेना प्रारंभ कर दिया। इस समय में प्रत्येक जाति अपनी संतान को शूरवीर बनाना चाहती थी। माताओं की यह अभिलाषा रहती थी कि उनके पुत्र ही

---

* द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ—'भारतीय इतिहास में राजपूतों के इतिहास का महत्त्व'—लेखक महाराजकुमार श्री रघुवीरसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, सीतामऊ, पृ० ४८।

नहीं, पुत्रियाँ तक वीर बनें। हिंदुओं ने प्राणों तक का मोह भुला दिया और अपने धर्म को आघात पहुँचने पर मर मिटना कर्त्तव्य बना लिया था।* भारत के इतिहास में यह समय हिंदू जाति के पतन का ही समय नहीं था, अपितु खोए हुए स्वातंत्र्य की प्राप्ति के उद्देश्य से वह हिंदुओं की बिखरी हुई शक्तियों के पुन: संगठन का भी समय था।

इतिहासकारों की प्राय: यह धारणा रही है कि वीर काव्य के रचयिताओं ने अपने आश्रयदाता राजाओं के शौर्य्य और पराक्रम के अत्युक्तिपूर्ण वर्णन को ही वीर काव्य की इतिश्री समझ ली। परंतु प्रत्येक कवि के लिये यह कथन सत्य नहीं है। हमारे विचार से भक्तिकाव्य की तरह वीरकाव्य के मूल में भी लोक-मंगल की भावना है। हिंदुओं ने स्वयं ईश्वर की लोकमंगलकारी या लोकरक्षक के रूप में भावना की है और उन्हें क्षात्र धर्म का संस्थापक माना है। लोक-कल्याण और लोक-रक्षा के व्यापक उद्देश्य की सिद्धि के लिये बहुत प्राचीन काल से क्षात्र धर्म की प्रतिष्ठा की गई है। लोक-रक्षा में तत्पर सच्चा वीर दीन-दुखियों को सतानेवाले अत्याचारियों और दुर्जनों के संहार में ही अपने शौर्य और साहस को चरितार्थ समझता है। अधर्म, अनीति और पापाचार का दमन करते हुए उसके चित्त में जो उल्लास और आत्मवृद्धि होती है वही उसका सच्चा आनंद है।

राजस्थान में स्थान-स्थान पर ऐसे अनेक लोकवीर और वीरांगनाएँ हो गई हैं, जिन्होंने चिर-प्रतिष्ठित लोकधर्म, लोकस्वातंत्र्य, शील और आत्मगौरव के महान् सिद्धांतों की रक्षा के लिये हर्ष तथा उल्लास के साथ अपने प्राण न्योछावर किए थे, जैसे महाराजा पृथ्वीराज चौहान, महारानी पद्मिनी, राठौड़ पाबू, महाराणा प्रताप, राठौड़ दुर्गादास, राव चंद्रसेन आदि। चारण कवियों ने इन वीरों के व्यक्तित्व में लोक-कल्याणकारी और लोक-रक्षक भगवान् की

---

* 'हरि रस' पृष्ठ ६ (महात्मा ईश्वरदास का जीवनचरित्र), संपादक स्व० ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य।

कला का दर्शन किया और उनके पावन चरित्रों का अपने वीर काव्यों में चित्रण किया।

चारण कवियों के वीररसात्मक प्रबंधकाव्यों में घमासान युद्धों का बड़ा ही विशद, और वीरोल्लासपूर्ण वर्णन मिलता है। इस संबंध में सूजा वीठूकृत 'राव जैतसी रो छंद'[१], महाकवि नरहरदास कृत 'अवतारचरित्र' (रामावतार), जगा खिड़िया कृत 'राव रतनमहेस दासोत री वचनिका'[२], कविराजा करनीदान कृत 'सूरजप्रकाश'[३] और 'विड़द सिणगार', सरूपदास कृत 'पांडव-यशेंदु-चंद्रिका' और स्वामी गणेश पुरी कृत 'कर्णपर्व' आदि ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

रामण मुगुल्ल राउ जइत राय। संख रइ दइत हुयसी सँग्राम।
चढिया कटक्क त्रांबक्क चाल। वेढिसी जइत न करह विमाल।
असरालाँ ताजी ऊमगेही। पन्नगाँ नेस धूजई पगेहि।
नींसाण वाजि नरगा नफेरि। रउदगति डऊँडि भरहरी भेरि।
मरुआड़ि सेन हालिया मसत। साइयर जाणि फाटा सपत।
नल वाजिय तुरियाँ वाजिनास। वाजिय पयाल पाए व्रहास।

१—इसमें बीकानेर के राव जैतसी और बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान की लड़ाई का वर्णन है। इसकी रचना संवत् १५९१ और १५९८ के बीच में किसी समय हुई थी।

२—इसकी रचना संवत् १६५७ के लगभग हुई थी। इसमें दाराशिकोह के सहायक राव रतनसिंह (रतलाम) और शाहजहाँ के बागी पुत्रों, औरंगजेब तथा मुराद की लड़ाई का वर्णन है।

३—'सूरजप्रकाश' में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और अहमदाबाद के सूबेदार शेरविलंद खाँ की लड़ाई का वर्णन है। यह लड़ाई संवत् १७८७ में हुई थी। सूरजप्रकाश के रचयिता कविराजा करनीदान ने महाराजा अभयसिंह की ओर से इस युद्ध में बहुत ही वीरता-पूर्वक भाग लिया था।

जइतसी राउ जंगमाँ जोल़ । कांँपियउ सेस कूरम्म कोल ।
जड़लग्ग फरी खडखड़ई जौड़ । पट होड़ाँ वाजिय पुरि पौड़ ।
....
रउद्रदल रहच्चई जइतराउ । होहूकि मेह वाजइ हलाउ ।
ताइयाँ उरेघइ कूँततेह । मारुअउ राउ मातउ कि मेह ।
धड़हड़इ ढोल धूजई धरत्ति । पड़यालगि वरसइ खेडपत्ति ।
बीकाहर राजा ईंदवग्गि, खाफराँ सिरे खिविया खडग्गि ।
पतिसाह फउज फूटंति पालि़ । ब्रहमंड जइत गाजइ बिचालि़ ।
अंबहर जइत बरसइ अबार । धुड्डुकिया मोर मुहिखग्ग धार ।

—बीठू सूजा कृत 'राव जैतसी रो छंद' से ।

हिंदुवाण तुरकाण करण धमसाण कड़क्के,
सजि कवाण गुणवाण दलां प्रारँभ बल़ दक्खै ।
खगाँ चढिधार हुवैविवि खंड, पड़े धर हिंदु मलच्छ प्रचंड ।
रल़त्तलि नीर जिही रुहिराल, खलाहल जाणिकि भादवखाल़ ।

—जगा खिड़िया कृत 'राव रतन महेसदासोत री वचनिका' से ।

तदहलै विदाहुय मूँछताँण । ज़ल जेम ऊझले समँद जाँण ।
खैड़ेच हाँकिया कटक खूर । सत्रवा काल़ विकराल़ सूर ।
गाजिया नगारा गयण गाज । भोमिया अँबा की गया भाज ।
गैमरां हैमरां थई जोड़ । तरवरां झगरां दीध तोड़ ।
लोहरां लंगरां झाट लाग । अघफरा गिरांतर झड़े आग ।

—कविराजा करनीदान कृत 'विरद सिणगार' से ।

दुवसेन उदग्गन खग्ग सुभग्गन, अग्ग तुरग्गन बग्ग लई ।
मचिरंग उतंगन दंग मतंगन, सज्जि रनंगन जंग जई ।
लगि कंप लजाकन भीरु भजाकन, वाक कजाकन, हाक बढ़ी ।
जिमि मेह संसबर यों लगि अंबर, चंड अडंबर खेह चढ़ी ।
फहरक्कि दिशान बड़े, बहरक्कि निशान उड़ै विथरे ।
रसना अहिनायक की निसरैं कि, परा झल़ होलिय की प्रसरें ।

गज घंट ठनंकिय भेरि भनंकिय रंग रनंकिय कोचकरी।
पखरान भनंकिय बान सनंकिय, चाप तनंकिय ताप परी।
....
डगमग्गि शिलोच्चय शृंग डले, भग भग्गि कृपानन अग्गि झरे।
वजि खल्ल तबल्लन हल्ल उभल्लन, भूमि हमल्लन घुम्मि भरी।

— महाकवि सूर्यमल्ल कृत 'वंशभास्कर' से।

चाली नृप भीम पैं कराली नृप भीम चमू,
नक्रमुखी तोपन के चक्र चरराटे व्हाँ।
अपनौ रु औरन को सोर न सुनात दौर,
घोरन की पोरन के घोर घरराटे व्हाँ।
मीर हमगीरन के तीर तरराटे वर,
वीरन वपुच्छद के बाज बरराटे व्हाँ।
हूर हरराटे धर धूज धरराटे सेस,
सीस सरराटे कोल कंध करराटे व्हाँ।

— स्वामी गणेशपुरी कृत 'वीर-विनोद' (कर्णपर्व) से।

काली को सो चक्र कै फनाली को सो फूँतकार,
लोयन कपाली को सो भय कैसो है उदोति।
आयुध सुरेस को सो मानहुँ प्रलै को भानु,
कोप को कृसानु किधौं मीचहू कि मानौ सौति॥
सुयोधन दुसासन दुर्मुख दुहृदगन,
दाहिबो प्रमानि दीप्ति दूनी हूँ तै दूनी होति।
जेठ ज्वाल भाल है कि जिह्वा जमराज की सी,
जहर हलाहल कै भीम की गदा की ज्योति।

—स्वरूपदास कृत 'पांडव-यशेंदु-चंद्रिका' से।

इन पद्यों में सेनाओं की तैयारी, शस्त्रास्त्रों की चमचमाहट, रण-प्रयाण की हलचल, योद्धाओं की मुठभेड़, वीरों की दिल दहलानेवाली हाँक, कायरों की भगदड़ आदि का सजीव और आलंकारिक वर्णन है।

वीरों और वीरांगनाओं के हृदयस्थ विभिन्न उदात्त भावों का विश्लेषण और काव्यमय मार्मिक चित्रण जैसा चारण कवियों ने किया

है वैसा शायद ही और कवियों ने किया हो। चारण कवियों की यह प्रवृत्ति उनकी अपनी है और प्रबंध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक पद्यों में अधिक पाई जाती है। वीरोत्साह, वीरदर्प आदि भावों की जैसी छटा मुक्तकों में व्यंजित वीरोक्तियों में है, वैसी प्रबंध काव्यों में नहीं मिलती। जिस परिस्थिति में वीरकाव्य की रचना होती है, उसके विचार से वास्तव में मुक्तक पद्य ही वीरभावनाओं के चित्रण के लिये अधिक उपयुक्त थे। चारण कवियों ने अपने वीर काव्यों में वीरों और वीरांगनाओं को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उनके शौर्यपूर्ण जीवन की घटनाओं का संश्लिष्ट चित्रण किया है। ईश्वरदास के दोहे, आसा की हाला, झालां की कुंडलियाँ और उनकी 'सूरसतसई', दुरसा की 'विरद छिहत्तरी', कविराजा बाँकीदास की 'सूर छतीसी', 'सिंह छत्तीसी', 'भुरजाल भूषण' और 'वीर विनोद', महाकवि सूर्यमल की 'वीरसतसई' आदि मुक्तक रचनाएँ वीरकाव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। इनमें से यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

लेठाकर धन आपणो, देतो रजपूताँह।
धड़ धरती पग पागड़े, अंत्रावलि गोधाहँ।

—ईश्वरदास।

वीर क्षत्रिय सरदार अपने शूर वीर सामंतों को मान, सत्कार तथा धन इसलिये देता है कि वे अपने सरदार के हाथ बिक जाते हैं। उसके लिये हर समय वे अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। वे काम पड़ने पर ऐसे साहस के साथ लड़ते हैं कि चाहे उनका शरीर जमीन पर लटक जाय और पैर पागड़े में रह जायँ, तो भी युद्धस्थल से मुँह नहीं मोड़ते। जब तक कि उनकी एक एक आँत न कट जाय, तब तक युद्ध करते रहते हैं। स्वामिभक्ति और शूरवीरता का यह पुनीत आदर्श है।

मतवाला घूमै नहीं, न घायल गिरणाय।
वा़ल सखी ऊ देसड़ो (जठे) भड़ बापड़ा कहाय॥
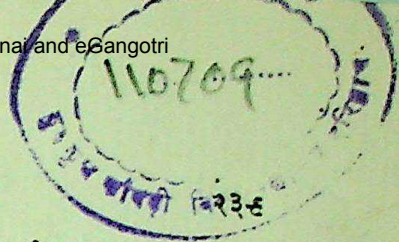
देवे गोंधण दुडवड़ी, सँवली चंपै सीस।
पंख झपेटां पिउसुवै, हू बलिहार थईस॥
ग्रीव नमाड़े देखणो, करणो शत्रु सिराह।
परणंता धण पेखियो, ओछी ऊमरनाह॥
ढोल सुणंता मंगली, मूछाँ भौंह चढंत।
चँवरी ही पहचाणियों, कँवरी मरणो कंत॥
—ईश्वरदास[1]।

प्रथम दोहे में वीरांगना वीर देश की कैसी अनूठी भावना करती है। वह ऐसा देश चाहती है, जहाँ वीर युद्धस्थल में मरणासन्न अवस्था में भी कायर की तरह से नहीं छटपटाते, जहाँ के लोग वीररसोन्मत्त हों और जहाँ योद्धाओं को मान्यता दी जाती हो। दूसरे दोहे में वीर क्षत्राणी के लोकोत्तर दिव्य प्रेम और उज्ज्वल पातिव्रत धर्म का मार्मिक चित्रण है। एक क्षत्रिय ललना इहलोक-लीला की समाप्ति के साथ ही दांपत्य-प्रेमलीला की समाप्ति नहीं समझती। वह मृत पति के भी सुख की भावना करती है और इस बात से उसे संतोष होता है कि गोधनी उसके पति की पगचंपी करती है, सँवली सिर दबाती है। उसके पंखों की झपट से मानों उसका पति सुख की नींद सो रहा है।

माँण रखे तो पीव तज, पीव रखे तज माँण।
दो दो गयंद न बंधही, एके खंभ ठाँण॥
—आशा बारहठ[2]।

इस दोहे में आत्मसम्मान की उदात्त भावना है।

रोकै अकबर राह, ले हिंदू कूकर लखाँ।
वींभरतो वाराह, पाड़े घणा प्रतापसी॥
लंघण कर लंकाल, सादूलो भूखो सुवै।
कुळवट छोड़ कंकाल, पैंढ न देत प्रतापसी॥

१—इनका रचनाकाल लगभग संवत् १५६५ है।
२—आशा ईश्वरदास के काका थे और उनके समकालीन थे।

बड़ी विपद सह वीर, बड़ी कीत खाटी बसू।
धरम धुरंधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥

—दुरसा आढा।

उक्त दोहों में उद्भट योद्धा महाराणा प्रताप के अपूर्व पौरुष, अदम्य सामरिक उत्साह और अतुल बल की विशद व्यंजना की गई है।

सूर न पूछै टीपणो, सुकन न देखै सूर।
मरणां नूं मंगल गिणै, समर चढ़े मुख नूर ॥
कृपण जतन धन रौ करै, कायर जीव जतन्न।
सूर जतन उणरो करै, जिणरो खाधौ अन्न ॥
सूर भरोसै आपरै, आप भरोसै सीह।
भिड़ दुहुँ ऐ भाजै नहीं, नहीं मरण रो बीह ॥
जिके सूर ढीला जरद, ऊबड़ ही आराँण।
मूँछ अणी भूहाँ मिलै, मुँह गौ राखै माँण ॥

—कविराजा बाँकीदास।

कवि ने इन दोहों में शूरवीरों के आदर्शों और धर्म का फड़कता हुआ वर्णन किया है। वीर योद्धाओं को अपने बल और पराक्रम पर विश्वास होता है। युद्ध का नाम सुनते ही वीरत्व की प्रभा से उनका मुख प्रकाशित हो उठता है, मृत्यु को वे मंगल समझते हैं। वे सदा निर्भय विचरते हैं और उनकी यह धारणा होती है कि अपने धर्म और आत्मसम्मान की रक्षा के लिये मरने से स्वर्ग मिलता है। वीर क्षत्राणियाँ भी अपने मान और मर्यादा की रक्षा के लिये आग को जल समझती हुई हँसती हँसती चिता में कूद पड़ती थीं। उन वीरांगनाओं को भी यह दृढ़ विश्वास होता था कि वे स्वर्ग में जाएँगी और वहाँ अपने वीर पतियों से मिलेंगी। क्षात्रधर्म का यह उज्ज्वल आदर्श है।

इला न दैणी आपणी, हालरियै हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बढाई माय ॥

—महाकवि सूर्यमल मिश्रण।

वीर माता अपने पुत्र को जन्म से ही मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करने का पुनीत आदेश दे रही है।